अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-13, 16-28 फरवरी, 2015

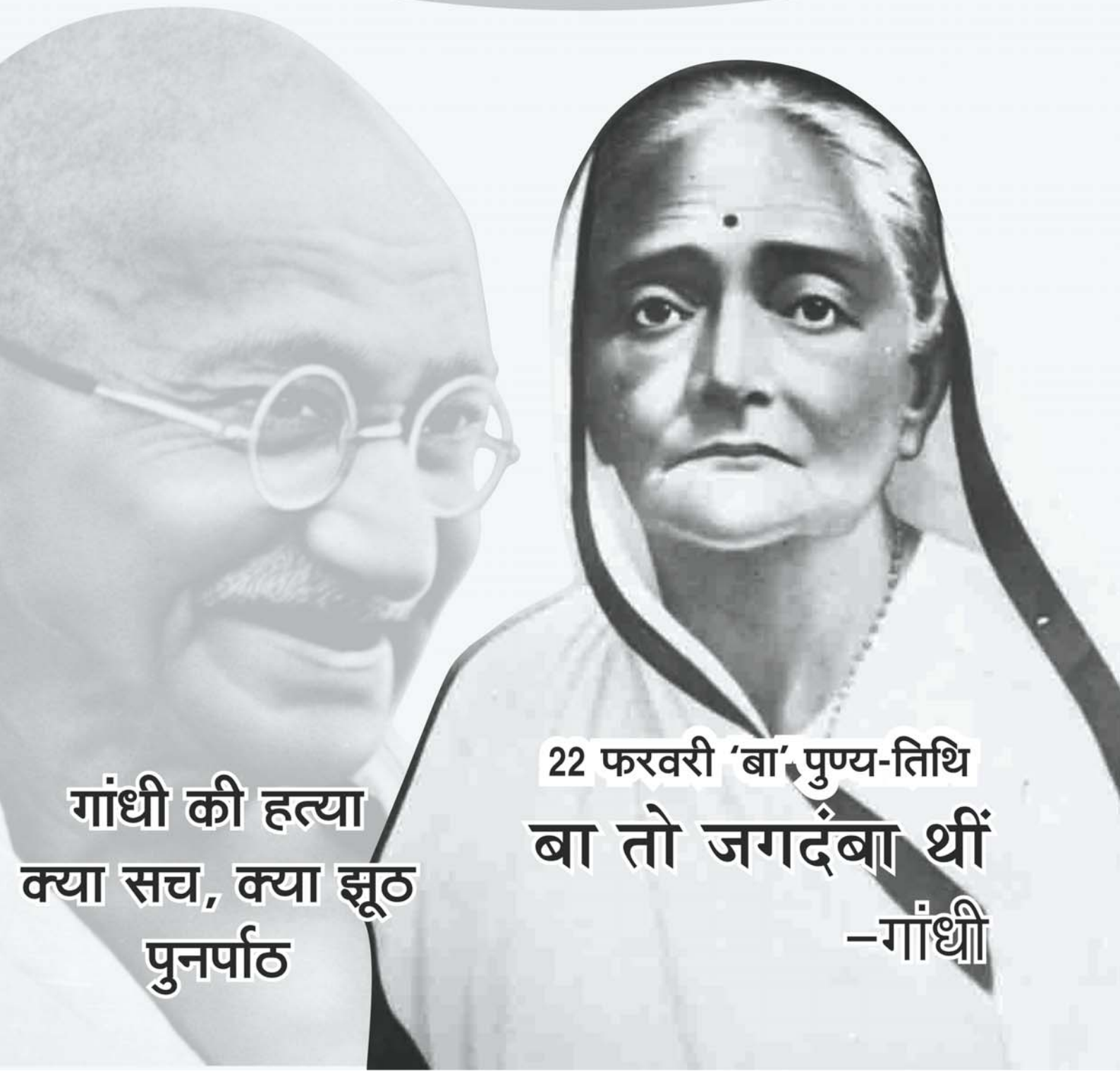

22 फरवरी 'बा' पुण्य-तिथि

बा तो जगदंबा थीं

–गांधी

गांधी की हत्या
क्या सच, क्या झूठ
पुनर्पाठ

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 38, अंक : 13, 16-28 फरवरी, 2015

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक
अशोक मोती
मो. : 7488387174

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह
भवानी शंकर 'कुसुम'
बिमल कुमार
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क
मूल्य : पांच रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये
खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. स्त्री अबला नहीं... 2
2. संपादकीय 3
3. बा तो जगदंबा थीं... 4
4. बा... 6
5. कुटुम्ब व्यवस्था न पुरुष प्रधान... 7
6. प्रभु तरुतल कपि डार पर... 10
7. गिरते सामाजिक मूल्यों में पिसती... 13
8. मातृरूपा नारी... 15
9. मुस्लिम माता... 16
10. गांधी की हत्या : क्या सच... 17
11. गतिविधियां और समाचार... 19
12. और अंततः - कहने को अबला... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

स्त्री अबला नहीं

❑ मो. क. गांधी

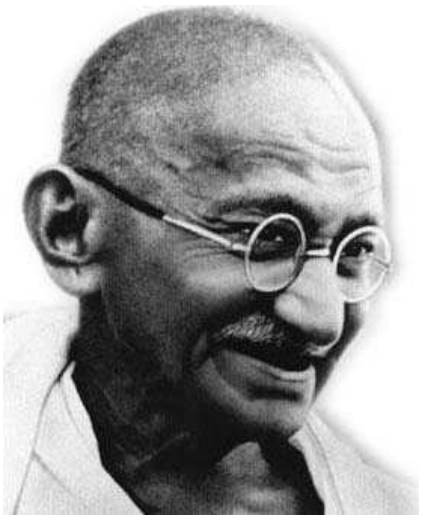

स्त्रियां स्वयं को अबला मानकर अपने कार्यों के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकती हैं। अबला विशेषण आत्मा के संबंध में कदापि लागू नहीं हो सकता। निर्बलता तो शरीर के बारे में कही जा सकती है। एक बालिका जिसकी आत्मा उज्ज्वल है, जिसे आत्मा की प्रतीति हो गयी है, वह बालिका साढ़े छः फुट लम्बे उद्धत अंग्रेज का सामना करके उसे परास्त कर सकती है। जिस स्त्री को अपने अस्तित्व का भान हो गया है उसका स्त्रीत्व उसके आत्मबल से सुशोभित है। अपने शरीर की दुर्बलता को स्वीकार करके जो स्त्री मन से भी दुर्बल बन जाती है वह अपने स्त्रीत्व को सुशोभित नहीं कर सकती! हमारे शास्त्र हमें बताते हैं कि सीता, द्रौपदी आदि स्त्रियों ने अपने तेज से दुष्टों को भयभीत कर दिया था। जैसे हाथी का शरीरबल मनुष्य के बुद्धिबल के आगे कुछ नहीं कर पाता वैसे ही मनुष्य अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों के आत्मबल के आगे मनुष्य का बुद्धिबल तथा शरीर बल तृणवत् है।

मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की स्त्रियां अपने को अबला मानकर अपने राष्ट्र की रक्षा करने के अधिकार को न तजें। जिस स्त्री जाति ने हनुमान आदि वीरों को पैदा किया, उसे अबला कहना निरा अज्ञान है। हो सकता है, स्त्री को अबला कहने में अभिप्राय पुरुष को स्त्री के प्रति उसके कर्तव्य की प्रतीति करवाना रहा हो। अर्थात् इसका यह अभिप्राय रहा हो कि शरीर से बलवान होने के कारण उसे अपनी राक्षसों जैसी उद्धत वृत्ति से अबला स्त्री को सताने का अधिकार नहीं है बल्कि उसका कार्य तो स्त्री की रक्षा करते हुए ऐसे साधनों को उसके हाथ में देना है जिससे उसकी आत्मा का विकास हो।

× × ×

स्त्री पुरुष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियां पुरुष से कहीं भी कम नहीं है। उसे पुरुष के हरएक काम में हाथ बंटाने का हक है और आजादी का उसे उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। अपने क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता उसी प्रकार स्वीकार की जानी चाहिए, जिस प्रकार पुरुष को उसके क्षेत्र में।

× × ×

स्त्री और पुरुष का दर्जा समान है, पर वे एक नहीं है। वे ऐसी अनुपम जोड़ी है, जिसमें प्रत्येक दूसरे का पूरक हैं। वे एक-दूसरे के लिए आश्रय रूप हैं—यहां तक कि एक के बिना दूसरे की हस्ती की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस बात में दोनों में से एक दरजा घटेगा उससे दोनों की बराबर बरबादी होगी।

(गुजराती से) नवजीवन-18-7-1920

संपादकीय

अहिंसक शक्ति की स्वाभाविक प्रतिनिधि

अहिंसक समाज के निर्माण कार्य से जो लोग जुड़े हैं, उन्हें दो कार्य निरंतर करते रहना होता है। एक तो हिंसा की शक्तियों एवं हिंसा आधारित संस्थाओं का निषेध करना व उनकी नैतिक स्वीकार्यता को चुनौती देते जाना होता है तथा दूसरा कार्य यह होता है कि जिन मूल्यों एवं रचनात्मक कार्यों द्वारा अहिंसक शक्ति का निर्माण होता जाये उनका विकास भी करते जाना, समाज में उनके दायरे का विस्तार करते जाना होता है।

हिंसा की शक्तियों का निषेध हिंसा द्वारा संभव नहीं है। गांधीजी ने जिन वृत्तियों को अहिंसक प्रतिरोध का आधार बनाया, उनमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, सहकार एवं सत्य के लिए सहर्ष शरीर-कष्ट सहने की क्षमता पर विशेष जोर दिया।

भारत में सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की बड़ी भागीदारी को गांधीजी इसलिए भी महत्त्वपूर्ण मानते थे, क्योंकि ये गुण महिलाओं में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहते हैं। और, ऐसा करते हुए गांधीजी लोकसत्ता की नयी परिभाषा भी गढ़ते चले गये। एक लंबे समय से सत्ता शब्द राजसत्ता एवं शोषण आधारित अर्थसत्ता का पर्याय बन गया था। इसी कारण सत्ता का चरित्र इस रूप में ही प्रतिष्ठित होता चला गया, जिसमें दमन करने की क्षमता, आक्रामकता एवं अपनी बात मनवाने के लिए अंतिम अस्त्र बल प्रयोग रहा। दूसरों को नियंत्रित करने की क्षमता, दूसरों को संचालित करने की क्षमता ही सत्ता का मापदंड बन गये। लोकसत्ता का आधार या प्रेरक वृत्ति ये शक्तियां नहीं हो सकती हैं। दमन, आक्रामकता एवं शस्त्रबल के विपरीत प्रेम, करुणा एवं आत्मबल ही लोकसत्ता के निर्माण के बुनियादी तत्त्व हो सकते हैं।

अहिंसक समाज के लिए लोकसत्ता एवं लोकसत्ता के निर्माण के लिए सत्याग्रह व रचनात्मक कार्य को आधार बनाना होगा। सत्याग्रह एवं अहिंसक रचना के कार्य के लिए जिस आत्मबल, प्रेम, करुणा एवं कष्ट सहने की क्षमता की जरूरत है, वह स्त्रियों को प्रकृति ने प्रचुर मात्रा में प्रदान कर रखी है। इसी कारण अहिंसक समाज के निर्माण में स्त्री-शक्ति का विशेष योगदान होगा।

इतिहास में अभी तक यह हुआ है कि जब हिंसा की संगठित शक्ति राजसत्ता के माध्यम से, समाज के संचालन का मुख्य आधार बनती गयी, तो समाज की अन्य सभी बुनियादी इकाईयों में भी हिंसा का प्रवेश बढ़ने लगा। समुदाय एवं परिवार प्रेम व परस्पर सहकार के आधार पर चलते थे, लेकिन इन दोनों में भी हिंसा के तत्त्व प्रवेश करते चले गये। भूमि (प्रकृति) एवं श्रम सामूहिक सहकार, पारिवारिक भावना एवं सहजीवी जीवन दृष्टि से पोषण व जीवन के आधार थे। हिंसा की व्यवस्था के अंतर्गत इन दोनों पर नियंत्रण तथा इन्हें लाभ के लिए कैसे उपयोग में लाया जा सकता है, इस विधा का विकास होता चला गया।

लोकसत्ता के निर्माण में महिलाओं की व्यापक भागीदारी का अर्थ होगा कि उन नैसर्गिक गुणों के आधार पर परिवार एवं समाज की सत्ता पुनः खड़ी की जाये, जो हिंसा के सभी तंतुओं को परिवार व समाज से बाहर कर सके।

आज की परिस्थिति में यह भी जरूरी है कि जो शोषित, वंचित एवं श्रम करने वाले समूह हैं, उनके बीच जो स्त्री शक्ति है, वह भी एकजुट हो एवं परिवर्तनकारी अहिंसक संघर्षों में कंधे से कंधा मिलाकर नेतृत्व प्रदान करे। उनके बीच नेतृत्व खड़ा करने का काम सत्याग्रह एवं अहिंसक वैकल्पिक रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से ही संभव होगा। देश भर में किसानों, दलितों, आदिवासियों, मछुआरों, पत्थरों का या खदानों में काम करने वालों के संघर्ष में महिलाओं का नेतृत्व खड़ा कर ही महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी को समाज के परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाया जा सकेगा।

एक और बात। अहिंसक आंदोलन अंदर की हिंसा को भी खत्म करने का माध्यम बने, इसमें भी स्त्री शक्ति का बड़ा योगदान होगा। प्रत्यक्ष हिंसा से विरत आंदोलन अहिंसक तभी बन सकेंगे जब अंदर की हिंसा एवं आक्रामकता तिरोहित होते जायें। आंदोलन की भाषा एवं संगठन में ये प्रकट होती जायेगी। अहिंसक आंदोलनकारियों की भाषा एवं संगठनात्मक संरचना प्रेम व करुणा से प्रेरित व परिपूर्ण होते जाने चाहिए। अर्थात् आंदोलन की आंतरिक संरचना एवं प्रेरक शक्ति में भी अहिंसा का प्रत्यक्ष दर्शन हो, इसमें भी स्त्री शक्ति की बड़ी भूमिका होगी।

आंदोलन के अंदर व्यक्तियों, मूल्यों एवं व्यवस्था के परिवर्तन का प्रत्यक्ष दर्शन तत्काल शुरू हो जाना चाहिए। शरीर श्रम एवं बौद्धिक श्रम को जीवन में बराबर का स्थान मिले, अंदर की आध्यात्मिक यात्रा एवं बाहर समाज में लोकशक्ति की प्रतिष्ठा एक ही प्रक्रिया के दो अंग हों, लोक जीवन के द्वंद्व व विग्रह के कारकों का सत्याग्रह व वैकल्पिक रचना के माध्यम से निराकरण हो सके, इसके लिए प्रकृति ने जिन नैसर्गिक गुणों से स्त्री शक्ति का निर्माण किया है, उन्हें ही समाज की शक्ति बनाना होगा।

विमल कुमार

22 फरवरी : बा पुण्य-तिथि

बा तो जगदंबा थीं

दक्षिण अफ्रीका में बापू के जीवन ने करवट लेना शुरू किया और 1904 में रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' पढ़कर तो उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन ही कर डाला। और फिनिक्स आश्रम की शुरुआत की। जीवन के परिवर्तन का उनका आग्रह इतना तीव्र और उत्कट था कि उन दिनों उनके साथ निभना बहुत मुश्किल बात थी। एक बार गोखलेजी ने गांधीजी से हँसी-हँसी में कहा था, ''तुम बड़े जालिम हो। एक ओर से तुम्हारा प्रेम और दूसरी ओर से तुम्हारा आग्रह दूसरे पर इतने जोर का असर करते हैं कि बेचारा तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलने और तुम्हें खुश करने को मजबूर हो जाता है।'' श्रीमती सरोजिनी नायडू तो बापू को अक्सर जालिम कहतीं और अपने पत्रों में 'माई डियर टाइरेंट (मेरे प्यारे जालिम) ऐसा लिखा करतीं।

बापू के ऐसे कठोर प्रेम में और जीवन-परिवर्तन की तीव्र उत्कटता में बा किस प्रकार निभी होंगी, यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है। बापू का जीवन-प्रवाह त्याग, वैराग्य और संन्यास की तरफ जोरों से बहा जा रहा था। इस हालत में बापू के अनुकूल होकर उनके साथ चलने के लिए बा ने कम त्याग नहीं किया था! बापू जैसे प्रचंड झंझावती संन्यासी के साथ चलने में जीवन में कैसे-कैसे भूकंप के कठोर धक्के सहन करने के प्रसंग आये होंगे!

दक्षिण अफ्रीका में बापू के जेल में जाने पर बा ने जेल के बाहर रहते वही भोजन लेने का व्रत लिया, जो जेल में नीचे की श्रेणी के कैदियों को दिया जाता था। सूखी डबल रोटी और मक्का का दलिया। दूध या चिकनाई के कभी दर्शन नहीं। परिणामस्वरूप वे सख्त बीमार हो गयीं। यहां तक कि उनके बचने की भी आशा नहीं रही। इस समय जेल से बापू ने लिखा : *''जुर्माना देकर तुम्हारी सेवा में नहीं आ सकता। देश के लिए कारावास भुगतना धर्म है। तुम्हारे पास पहुंच न पाऊं और तुम्हारी मृत्यु हो गयी तो तुम्हें जगदंबा की तरह पूजूंगा।''*

अवसान-काल के समय का वर्णन करते हुए मनुबेन गांधी ने लिखा है—''बा के बिस्तर के आसपास साथी-संबंधी खड़े थे। बा ने एकाएक कहा, 'बापूजी!' सुशीलाबहन ने बापू को बुलाया। वे हँसते-हँसते आये। कहने लगे, ''तुझे लगा होगा कि इतने सारे संबंधियों के आ जाने से मैंने तुझे छोड़ दिया, है न!'' यों कहकर बापू बा के निकट बैठे। बा के सिर पर धीरे-धीरे हाथ फिराने लगे। बा बोलीं, ''अब मैं जा रही हूं। हमने बहुत सुख-दुख भोगे। मेरे लिए कोई न रोयें। अब मुझे शांति है।'' इतना बोलीं कि सांस रुक गयी। कनुभाई (गांधी) फोटो ले रहे थे, परंतु बापूजी ने रोक दिया और रामधुन गाने को कहा। बस, दो मिनट में बा बापूजी की गोद में सिर रखकर सदा के लिए सो गयीं।

('माता कस्तूरबा' से)

रावजीभाई पटेल

दक्षिण अफ्रीका की बात। तब हम फिनिक्स आश्रम में रहते थे। सरकार के साथ अंतिम लड़ाई की तैयारियां चल रही थीं। सत्याग्रह का स्वरूप ऐसा था कि जिसमें वृद्ध, बच्चे, स्त्रियां सभी शामिल हो सकें। उसमें आवश्यकता थी केवल हृदय की सत्याग्रह की वृत्ति की, सिजकी तालीम आश्रम-जीवन से सहज मिल रही थी। वातावरण में उत्तेजना और उत्साह फैला हुआ था।

एक दिन सदा के नियमानुसार पाखाना साफ करने के बाद नहा-धोकर मैं लगभग साढ़े नौ बजे भोजनालय में गया। गांधीजी भी उसी समय शाला से आये। कस्तूरबा तो वहां थीं ही। रोटी का आटा गूंथ कर उन्होंने रख दिया था। उन्होंने रोटियां बेलना शुरू किया और मैंने सेंकना। गांधीजी फुटकर काम कर रहे थे। काम करते-करते गांधीजी ने एकाएक कस्तूरबा से पूछा : ''तुम्हें कुछ मालूम हुआ?''

''क्या?'' कस्तूरबा ने जिज्ञासा से पूछा।

गांधीजी ने जरा हँसते-हँसते जवाब दिया—''आज तक तुम मेरी विवाहिता स्त्री थी। लेकिन अब तुम मेरी विवाहिता स्त्री नहीं रही।''

कस्तूरबा ने जरा भौंहें चढ़ाकर कहा : ''यह किसने कहा? तुम तो रोज नयी-नयी समस्याएं ढूंढ़ निकालते हो!''

गांधीजी हँसते-हँसते बोले : ''में कहां ढूंढ़ निकालता हूं? वह जनरल स्मट्स कहता है कि ईसाई विवाह की तरह हमारा विवाह अदालत में दर्ज नहीं हुआ, इसलिए वह गैरकानूनी माना जायेगा। और इसलिए तुम मेरी विवाहिता स्त्री न मानी जाकर रखेल मानी जाओगी।''

कस्तूरबा ने गुस्से में आकर कहा : ''कहा उसने अपना सिर! उस निठल्ले को ऐसी-ऐसी बातें कहां से सूझती हैं?''

गांधीजी ने संक्षेप करके कहा : ''परंतु अब तुम स्त्रियां क्या करोगी?''

''हम क्या करेंगी?'' कस्तूरबा ने पूछा।

''हम लड़ते हैं वैसे तुम भी लड़ो। सच्ची विवाहिता स्त्री बनना हो और रखेल न बनना हो, साथ ही तुम्हें अपनी इज्जत प्यारी हो, तो तुम भी सरकार के खिलाफ लड़ो।''

''तुम तो जेल में जाते हो!''

''तुम भी अपनी इज्जत के खातिर जेल में जाने को तैयार हो जाओ।'' गांधीजी का वाक्य सुनकर कस्तूरबा आश्चर्य में पड़ कर बोलीं : ''जेल में! औरतें भी कहीं जेल में जाती हैं?''

''हां, जेल में। स्त्रियां जेल में क्यों नहीं जा सकतीं? पुरुष जो सुख-दुःख भोगते हैं, वह स्त्रियां क्यों नहीं भोग सकतीं? राम के पीछे सीता गयी। हरिश्चन्द्र के पीछे तारामती गयी। नल के पीछे दमयंती गयी। और सबने जंगल में बेहद दुःख उठाये।''

गांधीजी का विवेचन सुनकर कस्तूरबा बोल उठीं : ''वे सब तो देवियों के समान थीं। उनके कदमों पर चलने की शक्ति हममें कहां है?''

गांधीजी ने गंभीरतापूर्वक कहा : *''इसमें क्या है? हम भी उनकी तरह व्यवहार करें तो उनके जेसे हो सकते हैं, देवता बन सकते हैं। राम के कुल का मैं और सीता के कुल की तुम। मैं राम बन सकता हूं और तुम सीता बन सकती हो। धर्म के खातिर अगर सीता राम के पीछे न गयी होती और महल में ही बैठी रहती, तो उसे कोई सीतामाता न कहता। हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत के खातिर तारामती बिकी न होती, तो हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत में कमी रह जाती। उसे कोई सत्यवादी न कहता और तारामती को कोई सती न कहता। दमयंती नल के पीछे जंगलों के दुःख सहने में शामिल न हुई होती, तो उसे भी कोई सती न कहता। अब अगर तुम्हें अपनी आबरू रखनी हो, मेरी विवाहिता स्त्री बनना हो और रखेल समझी जाने के कलंक से मुक्त होना हो, तो तुम सरकार के खिलाफ लड़ो और जेल में जाने को तैयार हो जाओ।''*

कस्तूरबा चुप रहीं। मैं देखता रहा कि बा क्या जवाब देती हैं। यह सब सुनने में मुझे मजा आ रहा था। इतने में कस्तूरबा बोल उठीं : ''तो तुम्हें मुझे जेल में भेजना है न? अब इतना ही बाकी रहा है। खैर! परंतु जेल का खाना मुझे अनुकूल आयेगा?''

''मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम जेल में जाओ। तुम्हें अपनी इज्जत के खातिर जेल में जाने की उमंग हो तो जाओ। और जेल का भोजन अनुकूल न आये तो फलाहार करना।''

''जेल में सरकार फलाहार देगी?''

गांधीजी फलाहार प्राप्त करने का उपाय बताते हुए बोले :

''फलाहार न दे तब तक वहां उपवास करना।''

कस्तूरबा ने हँसकर कहा : ''क्या खूब! यह तो तुमने मुझे मरने का रास्ता बता दिया। मुझे लगता है कि जेल में गयी तो मैं जरूर मर जाऊंगी।''

गांधीजी सिर हिलाकर खिलखिला पड़े और बोले :

''हां, हां, मैं भी यही चाहता हूं। तुम जेल में मर जाओगी तो मैं जगदंबा की तरह तुम्हें पूजूंगा।''

''अच्छा, तब तो मैं जेल जाने को तैयार हूं।'' कस्तूरबा ने दृढ़ता से अपना निश्चय बताया।

गांधीजी खूब हँसे। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। कस्तूरबा किसी काम से बाहर गयीं कि मौका देखकर गांधीजी ने मुझसे कहा, ''बा में यही खूबी है कि वह मन या बेमन से मेरी इच्छा के अनुसार चलती है।''

गांधीजी ने तो यह वाक्य अपने गृहस्थाश्रम धर्म के सिलसिले में कहा था। परंतु उनकी इच्छानुसार कस्तूरबा ने व्यवहार किया, इससे भारतीय स्त्रियों के उद्धार का मार्ग खुल गया। और आज हिन्दुस्तान में स्त्री शक्ति की जो पवित्र और प्रचंड ज्वाला प्रकट हो गयी है, मुझे लगता है कि उसका बीज इसी अवसर पर बोया गया था।

बापू-बा-ब्रह्मचर्य

आज महाशिवरात्रि है। आज बा की श्राद्धतिथि। मनुबहन ने बापूजी से पूछा, आज शाम को सात पैंतीस को बा के अवसान के मुहूर्त पर गीतापाठ करें? बापू कहने लगे, *''जरूर करें। आज भोजन तो नहीं किया जा सकता। सोचता हूं कि बा का साथ अगर न होता तो मैं इतना ऊंचा नहीं उठा होता। बा ने मुझे खूब अच्छी तरह पहचान लिया था। और बा का परिचय मेरे सिवा दूसरा कौन अधिक दे सकता है? मेरे प्रति वह कितनी वफादार थी! और अंतिम समय जब मैं सोच रहा था कि बा मेरी गोद में जाये और देखो, बा ने मुझी को बुलाया और मेरी गोद में आखिरी सांस ली। ऐसी थी बा! उसे याद करके, उसके सद्‌गुणों की स्तुति करके उन गुणों को हम अपनायें, यही बा का सच्चा श्राद्ध है।''*

''ब्रह्मचर्य का गुण मेरी अपेक्षा बा के लिए बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरू में बा को इसका कोई ज्ञान भी नहीं था। मैंने विचार किया और बा ने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा संबंध सच्चे मित्र का बना। मेरे साथ रहने में बा के लिए सन् 1906 से, असल में 1901 से ही मेरे काम में शरीक हो जाने के सिवा और कुछ रह ही न गया था। वह अलग रह नहीं सकती थी। उसने मित्र बनने पर भी स्त्री के नाते और पत्नी के नाते मेरे काम में समा जाने में ही अपना धर्म माना। इसमें बा ने मेरी निजी सेवा को अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उसने मेरी सुविधा की देखरेख का काम छोड़ा नहीं। शुद्ध जीवन बिताने के मेरे प्रयत्न में मुझे उसने कभी रोका नहीं। इसके कारण हमारी बुद्धि, शक्ति में बहुत अंतर होते हुए भी मुझे यह लगा है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी रहा।''

''बा मेरे जीवन में ताने-बाने की तरह एकरूप हो गयी थी। उसके चले जाने से जो खालीपन पैदा हो गया है, वह कभी भर नहीं सकता। मैं शोक में डूबा रहता हूं, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में मेरी क्या स्थिति है, शब्दों में इसका वर्णन नहीं कर सकता।'' ❑

स्मृति-शेष

बा

❑ नारायण देसाई

बापू के जीवन में बा का स्थान असाधारण था। काठियावाड के एक राजा के दीवान के सुशिक्षित पुत्र की अशिक्षित पत्नी के रूप में कस्तूरबा के जीवन का प्रारम्भ हुआ। आगा खाँ महल में बापू के सान्निध्य में जब उनकी मृत्यु हुई, तब बापू ने बा के संबंध में कहा था : 'वह तो जगदंबा थी।' एक सामान्य भारतीय नारी ने अपने जीवनकाल में ही इतनी बड़ी मंजिल कैसे तय कर ली? कस्तूरबा के विकास का सबसे महत्त्व का कारण यही था कि वह नित्य विकसनशील महात्मा की पत्नी थीं। लेकिन यही एकमात्र कारण नहीं था। वह सच्चे अर्थ में महात्मा की सहधर्मचारिणी थीं। महात्मा के साथ-साथ धर्म का आचरण करना कोई छोटी बात नहीं थी। महादेवभाई के शब्दों में कहा जाये तो वह ज्वालामुखी पर्वत के मुँह पर बैठने जितना कठिन था।

भारतीय पुराणों और वाङ्मय में पत्नी की जो श्रद्धामयी मूर्ति की कल्पना की गयी है, उस श्रद्धामयी निष्ठावान सती का दर्शन इस युग में बा में होता था। ऐसी सोलह आने श्रद्धा के कारण ही वह बापू की सहधर्मचारिणी बन सकीं।

लेकिन ऐसी श्रद्धा होता हुए भी उन्होंने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो नहीं दिया था। समय-समय पर बापू को सीधे रास्ते लाने का भी काम उन्होंने किया है। दक्षिण-अफ्रीका में अपने एक हरिजन सहयोगी के मल-मूत्र का बर्तन साफ करने से बा ने इनकार किया था। तब बापू उनको घर से बाहर निकालने जा रहे थे। तब बा ने कहा, 'कुछ तो शरम रखो, इस दूर परदेश में आप मुझे घर से निकालने पर उतारू हो गये हैं!' अपने सिद्धांतों के आग्रह में अंधे बने बापू को जागृत करने का यह प्रसंग बापू ने खुद ही अश्रुपूर्ण कलम से अपनी आत्मकथा में अंकित किया है। इसके बाद जिंदगीभर बा ने अपनी स्वतंत्र अस्मिता कायम रखी थी। बापू के साथ वह काफी तपी-तपायी, बापू के साथ निरंतर उनका जीवन-परिवर्तन भी हुआ। परंतु यह सारा परिवर्तन उन्होंने स्वेच्छापूर्वक किया।

बापू के विशाल परिवार को बा एक मातृस्थान लगती थीं, फिर भी बा अपने रक्तसंबंधी सगे लोगों के विषय में बापू के जितनी अलिप्त नहीं रहती थीं। इस संबंध में सबसे कठिन परीक्षा हरिलाल काका (बापू के ज्येष्ठ पुत्र) ने करायी। बचपन से उनको शिकायत थी कि बापू ने उनकी शिक्षा का ठीक प्रबंध नहीं किया। तब से ही उनका स्वभाव बापू के खिलाफ बगावत करने का बन गया था। खास करके उनकी पत्नी गुलाब बहन की मृत्यु के बाद हरिलाल काका रास्ते से भटक गये। उनको ऐसी संगत मिली, जिससे वे कुमार्ग पर उतर गये। उनके इस व्यवहार का बा को बड़ा दुःख था। काफी कोशिश की गयी, लेकिन आखिर तक वे वापस नहीं आये। कुछ दिन बाद खबर आयी कि उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। उस समय कस्तूरबा ने हरिलाल के नाम पत्र लिखकर अपनी अंतर्वेदना प्रकट की थी।

मणिलाल काका दक्षिण अफ्रीका में रहकर 'इंडियन ओपीनियन' अखबार चलाते थे। रामदास काका रेशमी स्वभाव के व्यक्ति। कहीं भी गांधी के पुत्र के नाते अपनी पहचान नहीं देते थे। नागपुर में एक सामान्य नौकरी करके अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण किया। देवदास काका 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के मैनेजिंग डायरेक्टर थे। इस तरह बा के सभी पुत्र बा से दूर-दूर थे। लेकिन पौत्र और पौत्रियां बा के पास ही रहती थीं।

इनके अलावा बापू के सगे भी बा के सगे बनकर आते थे, वे अलग। एक बार मध्य प्रदेश के डॉ. खरे के मंत्रिमंडल में हरिजनों ने बापू के आश्रम में आकर 'सत्याग्रह' करने का निश्चय किया। इनके सत्याग्रह में उपवास था, लेकिन मृत्यु का भय नहीं था। क्योंकि बारी-बारी से एक आदमी 24 घंटों का उपवास करता था। इन लोगों ने सत्याग्रहियों के रहने के लिए आश्रम में जगह की मांग की। बापू ने उनको ही जगह पसंद कर लेने को कहा। इन लोगों ने सब कुटियों को देखकर बा की कुटी ही पसंद की। यह कुटी बापू की कुटी के बगल में ही थी। हरिजन 'सत्याग्रहियों' ने लेटने के लिए बा का कमरा और बरामदा पसंद किया।

बापू ने बा से पूछा, 'इन लोगों ने तुम्हारा कमरा पसंद किया है। क्यों इनको दिया जाये न?' प्रारम्भ में बा ने कुछ आनाकानी की। बापू ने सत्याग्रहियों की ओर से आग्रह किया। अंत में बा ने कहा, 'ये तो आपके लड़के हैं, अपनी झोपड़ी में ही जगह दे दीजिये न?' बापू ने हंसकर जवाब दिया, 'लेकिन मेरे लड़के तेरे लड़के भी तो हैं!' बा निरुत्तर हो गयीं और अपना कमरा इन 'सत्याग्रहियों' के लिए खाली कर दिया।

यह 'सत्याग्रह' कुछ दिन चला और शायद नये सत्याग्रहियों के अभाव में समेट लिया गया। लेकिन तब तक उन्होंने बा के कमरे पर कब्जा कर रखा था। इनकी रहन-सहन में सफाई नहीं थी। बा ने वह सब चुपचाप सहन किया। इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर उन लोगों को पीने के लिए पानी देती थीं और समय-समय पर खबर भी पूछ लेती थीं। एक बार खुद के लड़कों की तरह स्वीकार कर लेने के बाद वे चाहे जैसे भले-बुरे हों, तो भी उसकी बा को परवाह नहीं थी। उनका कर्तव्य तो पुत्रों की स्नेहयुक्त सेवा करना ही था।

आश्रम में आम तौर पर भोजन परोसने का काम बापू करते थे। भोजन संबंधी अपने

तरह-तरह के प्रयोगों की जानकारी वे मेहमानों को देते जाते। 'इस खाखरे में एक चम्मच सोडा डाला है, यह चटनी किस चीज की है, जानते हो? खाओगे, तब पता चलेगा। कडुवे नीम का कडुवापन तो उसका गुण ही है न? लहसुन रक्तचाप के लिए लाभदायी है,' इत्यादि। परोसने में बा भी बापू की मदद करती थीं, लेकिन वह मक्खन, गुड़ या ऐसी ही कोई मीठी चीज परोसती थीं। उनके परोसने में हम बच्चों को विशेष मजा आता था, तो हम बच्चों को परोसने में बा को भी मजा आता था। बाहर से कोई चीज भेंट के तौर पर आयी हो तो बा वह हमारे लिए बचाकर रखती थीं।

नयी-नयी चीज सीखने के शौक में बा को बुढ़ापा कभी छुआ ही नहीं। एक बालक के जितनी उत्सुकता से वह सीखने को तैयार रहती थीं। बा का अक्षर-ज्ञान मामूली था। उस वक्त रामनारायण चौधरी के पास मैं हिन्दी व्याकरण और रामायण पढ़ रहा था। बा ने मुझे बुलाकर कहा, 'तू मुझे रामायण नहीं पढ़ायेगा?' मैं असमंजस में पड़ गया। मैंने कहा, 'मोटीबा, आप नामनारायणजी के पास ही पढ़िये न? मैं तो नौसिखिया हूं।' बा ने कहा, 'नहीं, नहीं रामनारायण के पास तो समय होगा या नहीं, कह नहीं सकती। फिर मुझे कोई गुजराती में समझाने वाला तो चाहिए? ऐसा कर, तू दिन में उनके पास जो सीखता है, वह मुझे शाम को सिखाता जा। मैं भी तो नौसिखिया ही हूं न!' फिर कुछ दिन तक रोज शाम को सत्तर साल की मोटीबा ने पंद्रह वर्ष के बाबला से तुलसीकृत रामायण के पाठ लिये। एक बार बापू भी यह नाटक देख गये और अपनी मुस्कराहट द्वारा उन्होंने सम्मति प्रकट की। आज भी मैं जब रामचरित-मानस खोलता हूं, तब मेरे मानसपटल पर जगन्माता सीता के साथ-साथ जगदंबा कस्तूरबा की वह भक्तिमयी निर्मल मूर्ति विराजमान हो जाती है। ❑

कुटुम्ब-विमर्श

कुटुम्ब व्यवस्था न पुरुष प्रधान न स्त्री प्रधान, उभय प्रधान

❑ दादा धर्माधिकारी

मानवीय संबंधों का विकास करने के लिए हमें अब ऊंचे स्तर पर समाज में कौटुम्बिकता का विकास करना होगा। अब आप ये शब्द सुनती हैं—ग्राम-परिवार, ग्राम-समाज, ग्राम-ईकाई, यह सारी भाषा कौटुम्बिक क्षेत्र से आ रही है। इस क्षेत्र में यानी कौटुम्बिकता में भी दो प्रकार के संबंध हैं। एक संबंध ऐसे हैं जिनका आधार पुरुष आश्रित है। ऐसे संबंध पुरुष के मार्फत पुरुष के द्वारा निर्धारित होते हैं। सास, ननद, बहू, भावज ये संबंध पुरुष के मार्फत हैं। ऐसे संबंध कनिष्ठ माने जाते हैं, गौण माने जाते हैं। यहां पति के घर में तो सास प्रतिष्ठित हैं, और ससुर राजा है लेकिन पत्नी के नैहर में क्या है? किसी से पत्नी का भाई या पत्नी का बाप कहना गाली है। इसलिए अब केवल, पारिवारिक विचार करने से भी हमारा कार्य पूरा नहीं होगा। इसकी बुनियादों को देखना होगा। इन संबंधों की जड़ तक जाना होगा और जड़ यहां है कि स्त्री ने अपने जीवन को ही विवाह की उम्मीदवारी माना है। आजकल यूरोप और अमेरिका में आंदोलन हो रहा है, विद्यार्थियों का, युवकों का। उसमें उन्होंने एक बात लिखी है कि समाज परिवर्तन में लड़कों की समस्या है, लड़की की नहीं। लड़कियों की समस्या क्यों नहीं? लोग कहते हैं कि लड़कियों की एक ही समस्या है कि उनकी शादी हो जाय और वे माताएं बन जायं। इसके सिवा उनकी कोई समस्या नहीं है। इनके जीवन की इसमें परिपूर्ति है। कोई लड़का शादी नहीं करना चाहता तो इनकार कर देता है लेकिन लड़की उठकर नहीं कहती कि वह शादी नहीं करना चाहता तो मुझे भी शादी की कोई जरूरत नहीं है। एम. ए. पी. एच. डी. लड़की भी ऐसा नहीं कह सकती। कोई कलक्टर हो जाय, वह लड़की नहीं कह सकती। इसीलिए यह कहा जाता है कि कल अगर वह हमारे यहां की प्रधान सेनापति हो जाय तब भी ऐसा नहीं कह सकती। इस बारे में सोचने की जरूरत है। आपके चित्त में अगर यह चीज चुभती है, तो सोचिए! स्त्री जीवन की समस्या है यह! दहेज वगैरह सब इसी समस्या की ऊपरी लक्षण हैं। बीमारी तो जड़ में है; ऊपर की मरहम पट्टी से काम नहीं होने वाला है। तो, आज जो कुटुम्बिनी स्त्री हैं, वह कुटुम्बिनी मानवी भी बनें, बराबरी के नाते रहे।

कुटुम्ब-व्यवस्था कैसी हो?

अब कुटुम्ब-व्यवस्था पुरुष प्रधान भी नहीं रहेगी और स्त्री प्रधान भी नहीं रहेगी। उभय प्रधान होगी। लेडी ऑस्टर इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट की मेम्बर हुई तो उससे पूछा गया कि मनुष्यों का बनाया हुआ समाज ज्यादा अच्छा होगा कि स्त्रियों का बनाया हुआ? *उस वक्त यह मान्यता हो गयी थी कि पुरुषों ने इस समाज को बिगाड़ दिया है। स्त्रियों का बनाया हुआ समाज इससे श्रेयस्कर होगा, बेहतर होगा। उसने कहा कि किसी पुरुष के बनाये हुए समाज से यदि बदतर समाज हो सकता है, जिसकी मैं कल्पना कर सकती हूं, तो वह है स्त्रियों का बनाया हुआ समाज। जो समाज अकेले पुरुषों का बनाया हुआ हो या अकेली स्त्रियों का बनाया हुआ हो, वह समाज मानवीय समाज हो ही नहीं सकता। मानव-समाज की सफलता इसी में है कि वह दोनों का बनाया हो। दोनों के सहयोग से बना हो। इसी में से तो समग्र मानव आयेगा, विकसित होगा। तो स्त्री पहले समान भूमिका पर आ जाय। कुटुम्ब में वह कैसे आ सकती है? इसका मैंने आपको उपाय बताया, बिल्कुल सीधा उपाय जो करने में कत्तई मुश्किल नहीं है। केवल संकल्प शक्ति चाहिए।* अगर

लड़का शादी का उम्मीदवार नहीं है तो लड़की भी नहीं होगी—यहां से उसकी समान भूमिका का आरम्भ हो सकता है। इस समान भूमिका में से फिर कौटुम्बिक मूल्यों के विकास की तरफ हम चलें।

कुटुम्ब के दोष

आज के कुटुम्ब में दो दोष हैं—एक दोष यह है कि कुटुम्ब में स्त्री की भूमिका गौण है और दूसरा दोष यह है कि उसका आधार सम्पत्ति है। जिस कारण समाजवादियों ने और साम्यवादियों ने कुटुम्ब संस्था पर प्रहार किया, उसके कारण मैं आपको गिना रहा हूं। कुटुम्ब का आधार सम्पत्ति और उसका उत्तराधिकार है। यह उत्तराधिकार भी दो तरह का है—एक, आनुवंशिक और दूसरा सम्पत्ति का। आनुवंशिक से मतलब है—मेरा नाम चले, इस दिशा में अखंड प्रयास। पिण्डोदक क्रिया-श्राद्ध का कोई अधिकारी चाहिए, जो मेरा नाम चलाये। लड़की तो यह चला नहीं सकती क्योंकि वह हमारे घर की नहीं है। इसलिए लड़के की जरूरत है। इस तरह लड़की से लड़के का मूल्य अधिक हुआ। केवल सम्पत्ति का उत्तराधिकार नहीं, यह दूसरा उत्तराधिकार आनुवंशिकता का है। इन दोनों उत्तराधिकारों के कारण पुत्र का मूल्य बढ़ जाता है।

किसी लड़के से पूछिए—शादी करेगा? वह कहेगा क्या करूंगा, शादी करके? मेरे पास है ही क्या? मोटर नहीं, बंगला नहीं, सुख-सुविधा नहीं, तो कोई अच्छी लड़की मुझसे शादी करना क्यों चाहेगी? मोटर बंगला वाले लड़के से शादी करेंगे और इसी में उलझे रहेंगे। कहीं समाज सेवा या क्रांति कार्य के लिए आह्वान किया जाय तो जानते हैं जो जवाब मिलता है—क्या करें साहब पत्नी है, पुत्र है, घर गृहस्थी है, और सभी कुछ सँभालना है। कब क्या करें? अपना बचाव करता है और फिर; संग्रह करता है और वह भी सारा स्त्री के नाम पर करता है मानो वह शंकराचार्य हो गया है, उसे किसी चीज की जरूरत ही नहीं है। सब स्त्री के नाम पर करता है और स्त्री इसे सहती है! वह क्यों नहीं कहती है कि सम्पत्ति और स्वामित्व की मुझे आवश्यकता नहीं है। इसका नाम सिक्योरिटी है, आश्वासन है। 'स्त्री और बच्चों के लिए मैं सब कुछ कर रहा हूं' इतना वह स्वार्थ त्यागी है—ऐसा जो दिखाता है असल में वह ढोंग है लेकिन कहता यही सब है। तो, इसमें क्या संकल्प हो सकता है? लड़की पूछ सकती हे कि ऐसे में वह क्या करे? मैं आधुनिक लड़की का कार्यक्रम बता रहा हूं।

एक बार मुझे विद्यार्थियों की सभा में बुलाया गया और उनकी ओर से कहा गया कि हमारे पास जमीन नहीं है जो भूदान दें, सम्पत्ति न होने से हम सम्पत्ति दान भी नहीं दे सकते, और समय भी हमारे पास कहाँ? हमको तो अध्ययन करना पड़ता है, जो कुछ बचा हुआ समय है सिनेमा दान करते हैं। अब बताइए हम क्या करें? मैंने कहा कि तुम अपने मां-बाप को लिख दो कि हम सम्पत्ति के उत्तराधिकारी नहीं रहेंगे। लेकिन जिस लड़के ने मुझे बुलाया था, वह मुझे कान में कहने लगा कि आपको बुलाने में गलती हुई। क्योंकि यह सब वह छोड़ना नहीं चाहता था। कोई दहेज नहीं छोड़ना चाहता, पैतृक सम्पत्ति के अधिकार को भी नहीं छोड़ना चाहता, और यह सारा करना चाहता है स्त्री के नाम पर क्योंकि यह उसका क्षेत्र माना गया है। घर में मैं सब कुछ अपने लिए रख रहा हूं और स्त्री के लिए कहता हूं—कुटुम्ब की यह कल्पना अब समाप्त हो जानी चाहिए।

स्वामित्व, सम्पत्ति और उत्तराधिकार—कुटुम्ब के पहले ये तीन आधार थे, जिनके कारण सारे क्रांतिकारी, समाजवादी और साम्यवादी कुटुम्ब संस्था पर प्रहार करने के लिए उद्यत हुए।

गांधी की खोज

गांधी की इस दिशा में यह खोज रही कि क्या कुटुम्ब संस्था का शुद्धिकरण हो सकता है? क्या कौटुम्बिकता का मानवीय कारण हो सकता है? संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण बिल्कुल एक अलग चीज है राजकीयकरण बिल्कुल एक अलग चीज है और लोकस्वामित्वकरण एक अलग चीज है। लेकिन क्या संस्थाओं में मनुष्य, मनुष्य के साथ संबंधों का शुद्धिकरण हो सकता है? यह वहीं संभव है, जहां नियम कम से कम हैं। कुटुम्ब में नियम कम से कम और संकेत अधिक से अधिक हैं। मां उठती है 4 बजे, वह सुबह से रात के 11 बजे तक काम करती है। कोई टाइम टेबुल बना हुआ नहीं है। पिताजी अपना काम करते हैं। लड़के लड़कियां अपना अपना काम करते हैं। कहीं प्रश्न नहीं, संघर्ष नहीं! सब में सहयोग है। यह संकेत है कि कम से कम नियम होने पर भी कैसे सारा कार्य हो सकता है। क्या यही चीज समाज में आ सकती है? कम से कम प्रशासन और अधिक से अधिक व्यवस्था। कम से कम नियम तथा नियंत्रण और अधिक से अधिक सहयोग। अपनी संस्थाओं में गांधी ने इसका प्रयोग किया। उन्होंने ऐसे आश्रम भी खड़ा करने की कोशिश की, जहां नियम कम से कम और जिम्मेवारी अधिक से अधिक ली जा सके। गांधी की यह खोज थी। इसी खोज के आधार पर यह कहा गया कि क्या कुटुम्बों में मनुष्यों के संबंधों का शुद्धिकरण हो सकता है? मानवीयकरण हो सकता है? क्या शुद्धिकरण और मानवीयकरण के आधार पर कौटुम्बिक संबंध आ सकते हैं?

समाजव्यापी बनाने वाले मूल्य

अब आप कुटुम्ब में ही देखिए। वहां दो-तीन चीजें अद्‌भुत हैं। नियम कम, काम अधिक और काम के साथ दाम का कोई संबंध नहीं। श्रम का उपयोग के साथ कोई संबंध नहीं। समाजवाद हो, साम्यवाद हो, सर्वोदय हो, सब यही तो कहते हैं कि मनुष्य के श्रम का संबंध शक्ति के साथ होगा और मनुष्य के उपयोग का संबंध उसकी आवश्यकता के साथ होगा। कहने को तो यह कहा जा रहा है, लेकिन व्यवहार में यह कहां है? श्रम का शक्ति के साथ संबंध और उपभोग का आवश्यकता के साथ संबंध केवल कुटुम्ब में है। यह एक बहुत बड़ी बुनियादी चीज है कि कुटुम्ब में काम के दाम नहीं हैं।

मां रसोई बनाये, तो कोई दाम नहीं, पिताजी लकड़ी चीरे तो कोई दाम नहीं, टाइपिंग जानते हैं तो कोई दाम नहीं दूसरा मूल्य और एक तीसरा मूल्य कौटुम्बिकता में है—वह भी बहुत महत्त्व का है और यह है कि एक दूसरे के दोषों की जिम्मेदारी स्वीकार करना। अब इन तीनों मूल्यों को समाज व्यापी बनाना है। ये जो कौटुम्बिक मूल्य हैं—वे सोशल वैल्यू में—सामाजिक मूल्यों में बदलना—इसे मैंने स्त्री की नागरिकता कहा है। यह करने से ही जो गृहिणी है वह नागरिक हो जाती है। *केवल वोट का अधिकार मिलने या पार्लियामेंट में जा सकने से ही स्त्री नागरिक नहीं हो जायेगी। उसे कौटुम्बिक मूल्यों को सामाजिक मूल्य बनाने की भी जिम्मेवारी लेनी होगी।*

कुटुम्ब में जो मूल्य हैं, क्या उनका विस्तार समाज में हो सकता है? गांधी का एक स्वप्न था। अपराधियों को दंड नहीं होगा, अपराधियों का शिक्षण होगा। सारे क्रांतिकारियों का यही स्वप्न था। मैंने सिर्फ गांधी का नाम ले लिया। पुराने सारे क्रांतिकारी टालस्टाय वगैरह, उधर मार्क्स, लेनिन आदि सबने यही कहा था कि जितने अपराधी हैं—उनके सुधार की योजना होगी, दंड की नहीं। सजा नहीं सुधार! अपराध की सजा नहीं, अपराध का सुधार! यह कब होगा? अनासक्त योग में गांधी का एक सूत्र है कि दूसरे का अपराध अपना अपराध समझूंगा तब। कुटुम्ब में दूसरे के अपराध को अपना अपराध मान लेना साधारण बात है। बेटा बीमार है तो मां कहती है हे भगवान्! इसे ठीक कर दो और इसकी बीमारी मुझे दे दो। बेटे ने गलती की, मगर मां सजा भुगतने को तैयार! यह जो दूसरे के अपराध के साथ आत्मीयता की भावना है, वह जब समाज में फैल जायेगी तब फिजा बदलेगी, वातावरण बदलेगा और माताएं कहेंगी कि हमारे लिए कोई हिन्दू नहीं, कोई मुस्लिम नहीं—हम अपने बेटे एक दूसरे को काटने नहीं देंगी। यह कब होगा? जब इस कौटुम्बिक भावना का विस्तार समाज में होगा। यह होगा तो पुलिस, फौज, और जेलखाने की जरूरत कम होगी, अदालत की आवयकता कम हो जायेगी। विनोबा कहता है कि ग्राम परिवार होगा, तब पुलिस, फौज और जेलखाने की जरूरत नहीं होगी। अदालत की भी जरूरत नहीं।

लेकिन इसकी नर्सरी कौन-सी होगी? वह नर्सरी तो कुटुम्ब-व्यवस्था ही होगी, कुटुम्ब, कुटुम्ब संस्था।

स्त्री और पुरुष दोनों के समाज में मुक्त संबंध हो और पवित्र भी हो। कुटुम्ब में ऐसा है, तो फिर समाज में क्यों नहीं हो सकता?

कौटुम्बिक संबंधों के आधार क्या हैं? एक रक्त और दूसरा विवाह। जहां रक्त का भी संबंध नहीं है और विवाह का भी संबंध नहीं है, वहां नागरिक संबंध है।

मित्रता की युक्ति

स्त्री और पुरुष दोनों नागरिक हैं। और दोनों एक दूसरे के साथी हैं। अब इन दोनों में मित्रता होनी चाहिए। मित्रता होने के लिए हमने एक युक्ति सोची है। हमने क्या सोची, बापू ने एक युक्ति सोची थी कि कुटुम्ब में जो संबंध हैं, उनको पहले समाज में लाओ। समाज में उनका विचार करो। इसलिए बापू के आश्रम में आपने देखा होगा कि सबके बापू बा के भी बापू और बा सबकी बा और बापू की भी बा। सबकी बा होगी, वह किसी की पत्नी नहीं हो सकती और सबका बापू होगा, वह किसी का पति नहीं हो सकता यह तो साफ ही है। और दूसरे कई ऐसे होंगे जिनके कोई नाम ही नहीं जानते। वे केवल काका मामा के रूप में ही जाने-पहचाने जाते हैं। कुटुम्ब की इन रिश्तेदारियों को समाज में दाखिल करने की कोशिश बापू ने की। आश्रम में कौटुम्बिक मूल्यों को सामाजिक बनाने का प्रयोग हुआ।

एक बीच की चीज है। यह भाई है, यह बहन है। कितना भी बड़ा गुण्डा हो, अगर उसने भाई बहन का रिश्ता मान लिया तो फिर उसमें, उसकी बुद्धि में, उसकी दृष्टि में, पाप नहीं आता। यह हर शहर में हर गांव में मैंने देखा है और मैं देखता हूं। तो ये जो रिश्तेदारियां हैं—सदस्यता की जगह रिश्तेदारी—इनका विकास होना चाहिए।

सदस्यता और रिश्तेदारी से परे है—नागरिक की भूमिका। नागरिक की भूमिका से भी व्यापक भूमिका मानवता की भूमिका है। जो नागरिक नहीं है, वह भी मनुष्य है। गांधी को हम विश्व नागरिक नहीं मानते, विश्व मानव मानते हैं। नागरिकता का संबंध भी वैधानिक है हृदय का संबंध उससे आगे का है। मनुष्य-मनुष्य का संबंध हृदय का है। यहां हमको पहुंचना है। जहां सारे समाज को पहुंचना है, वहीं आपको भी पहुंचना है यानी सारी स्त्रियों को पहुंचना है क्योंकि आखिर स्त्री की भूमिका भी तो मनुष्य की ही भूमिका है। मनुष्य को जहां पहुंचना है, पुरुष अपने प्रयत्नों में आज तक अगर वहां पहुंचने में सफल नहीं हुआ तो उसका कारण पुरुष तो है ही, लेकिन उसका दूसरा कारण यह है कि स्त्री की भूमिका गौण है और उसे ढोना पड़ा है। हर यात्रा में हर प्रवास में पुरुष के साथ पुरुष हो तो सहारा होता है। और उसके साथ स्त्री हो तो जिम्मेवारी होती है। जीवन यात्रा में भी अब तक पुरुष के लिए स्त्री एक जिम्मेवारी रही है। मां के रूप में स्त्री, पत्नी के रूप में स्त्री, पुत्री के रूप में स्त्री, बहन के रूप में स्त्री। बहुत नम्रता से एवं भक्तिपूर्वक भी उसने कभी बोझ ढोया होगा तो भी आखिर है वह बोझ ही। स्त्री इसकी अब साथिन बन जानी चाहिए, सहयोगिनी।

मद्रास में एक मूर्ति है, वह भी छोटी-सी लड़की की मूर्ति, वह बहुत सुंदर है। वह अपने छोटे भाई को पीठ पर लेकर चल रही है। उसके चेहरे का भाव दिखाता है कि वह ऊपर पहाड़ चढ़ रही है और पसीने से उसका सारा शरीर सराबोर है। एक वृद्ध आदमी से उसकी मुलाकात हुई तो वह पूछने लगा कि क्या तुझे इसका बोझ नहीं लगता? उसने जवाब दिया—यह बोझ थोड़े ही है, भाई है। वह सोचने लगी कि मेरे कंधे पर जो मेरा भाई है इसे यह वृद्ध पुरुष बोझ क्यों समझता है!

स्त्री बोझ क्यों है? क्योंकि उसे सदा पुरुष ही ढोता है, वह कभी नहीं ढोती।

हमारे शास्त्रों में एक असंभव चीज बतायी है स्वस्कन्धारोहण। अपने कंधे पर कोई चढ़ नहीं सकता, लेकिन स्त्री पुरुष के

कंधे पर चढ़ सकती है। पुरुष स्त्री के कंधों पर क्यों नहीं चढ़ सकता? परस्पर स्कन्धारोहण एक दूसरे के कंधे पर चल सके, 'फीजीकली' मैं नहीं कह रहा हूं, इस तरह की चीज अब समाज में आनी चाहिए और एक दूसरे के पूर्ण सहयोग से आगे बढ़ना चाहिए।

लोग कहते हैं कि सहयोग समानों के बीच रहता है। समकक्ष जो होते हैं, उनमें सहयोग होता है तो यह क्रांति का अंतिम चरण है। अमीर, गरीब, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, भंगी—इन सबके साथ-साथ क्रांतिकारी को एक अंतिम समस्या भी सुलझानी होगी और वह समस्या है स्त्री और पुरुष की समस्या। इस संबंध में गांधी ने अपने कुछ प्रयोगों से कुछ दिशाओं का अंतिम सूचन किया है। कुछ दिशाओं की तरफ इंगित किया है। वह दिशाएं कौन-सी हो सकती हैं, यहां मैंने उसकी कुछ चर्चा की है।

इस प्रकार तीन बातें हैं, जिनकी ओर मैंने आपका ध्यान आकृष्ट किया है :

पहली, चर्चा के संदर्भ में स्त्री का निरपेक्ष मूल्य आपके सामने रखा।

दूसरी, चर्चा के संदर्भ में स्त्री और पुरुष दोनों की पारस्परिकता के विषय में कुछ संकट, कुछ विचार आपके सामने रखे।

तीसरी चर्चा के संदर्भ में कौटुम्बिकता और नागरिकता में स्त्री की भूमिका कौन-सी हो सकती है, इसका कुछ इंगित किया है। ❑

('क्रांति की प्रक्रिया में नारी की भूमिका' से)

आवश्यक सूचना

दिल्ली में राष्ट्रीय उपवास

आप सभी साथियों को सूचित करना है कि सर्व सेवा संघ द्वारा पूर्व निर्धारित राष्ट्रीय उपवास कार्यक्रम 25-26 मार्च 2015 को दिल्ली के जंतर-मंतर पर आयोजित हो रहा है। इस संबंध में किसी भी जानकारी के लिए दिल्ली प्रदेश सर्वोदय मंडल के संयोजक श्री अशोक शरण से आप संपर्क कर सकते हैं।

मो. 9810948870

ई-मेल : *sharanashok@yahoo.co.in*

वार्तालाप

प्रभु तरुतल कपि डार पर...

❑ **महादेव देसाई**

अंदर से बराबर आवाज आया करती थी कि, 'उपवास कर, उपवास कर'। यह कोई तीन दिन से मंथन चल रहा था। 'चालीस उपवास करूं या इक्कीस?' जवाब मिला, 'इक्कीस ही कर!'—गर्भिणी के पेट में बच्चे के हिलने-डुलने से जैसी व्याकुलता होती है, वैसी व्याकुलता हो रही थी। लगता था कि कहीं पागल तो नहीं हो जाऊंगा! तीन दिन से नींद जाती रही। मानो आदमी की मरने की तैयारी हो रही थी!

ये शब्द हैं बापू के। 'प्रभु तरुतल, कपि डार पर...' एक गंभीर किन्तु एक हास्य वार्तालाप भी है, जिसमें बापू, वल्लभभाई पटेल, राजाजी, देवदास, काका कालेलकर और महादेव भाई देसाई जो इस वार्तालाप के लेखक हैं, शामिल हैं। यह गांधी और उनके सहचरों के साथ उनके परस्पर व्यवहार और सहजता को दिखाता है। इसे पढ़ते ही आपको बार-बार पढ़ने की इच्छा होगी, खासकर देवदासजी और बापू की नोंक-झोंक को जब आप पढ़ेंगे तो निश्चय ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायेंगे। **–कार्य. सं.**

रात को देरी से सोया था, इसलिए सुबह प्रार्थना के बाद बापू ने मुझे सोने के लिए भेज दिया। तब मुझे कल्पना भी नहीं थी कि एक बड़ा प्रचंड झंझावात आ रहा है। साढ़े पांच बजे उठकर देखा, बापू वल्लभभाई के साथ घूमते हुए बोल रहे हैं। छः बजे तक घूमे। हम चुपचाप सुन रहे थे। एक शब्द भी बोले नहीं। बोलने जैसा कुछ लगा ही नहीं! वातावरण में सन्नाटा फैल गया। अंदर ही अंदर उमड़ते विचारों की वजह से हम सुन्न हो गये थे।

आधे घंटे के बाद सरदार की वाचा फूटी। कहा, ''इनसे अधिक पवित्र पुरुष को देखा है? ईश्वर इनको रखना चाहता है या ले लेना, किसको मालूम? इनके हृदय और आत्मा का प्रवाह आज जिस दिशा में जोरों से बह रहा है, उसे मन-वचन-काया से हम मौनपूर्वक अनुकूल हों तो बस!''

फिर देवदास को वॉइसरॉय को लिखा पत्र देते हुए बापू कहने लगे—''देख, वल्लभभाई और महादेव ने जरा भी चर्चा नहीं की। वैसे तू भी इसे शांति से पढ़ ले और समझ ले कि चर्चा करना बेकार है।''

देवदास एक बार पढ़ गया, दूसरी बार पढ़ गया। थोड़ी देर के बाद वाग्धारा चली। बहादुर बाप का बहादुर बेटा बाप को अमित शब्दों में उपालंभ देने लगा। रोता जाये और बोलता जाये। बोलने में आवेश, क्रोध, दुःख और तीव्र वेतना थी। रोना रुके तब बोलता और बोलना रुके तब रोता!!

बापू बोले, ''भाई! इक्कीस दिन का या चालीस दिन का, यह द्वंद्व तो एक महीने से चल रहा है। क्या सभी विचार मनुष्य दूसरों को बता सकता है? तीन दिन हुए, घंटों नींद नहीं। भीतर आग जल रही थी। जाने कोई महाप्रलय की तैयारी चल रही हो! अनशन के विचार आते रहे और मैं उन्हें मन से निकालता रहा। रात को सोने गया तब मालूम नहीं था कि आज कुछ होने जा रहा है। ग्यारह बजे जग गया। रामनाम तो चल ही रहा था, मंथन भी जोरदार चला था—'उपवास क्यों नहीं करता?' साढ़े बारह बजे स्पष्ट आवाज आयी, 'तुम्हें उपवास करने के अलावा कोई चारा नहीं।' आवाज सुनने के बाद द्वंद्व समाप्त हो गया, वेदना शांत हो गयी। और मैं अपने को बिलकुल हलका महसूस करने लगा। हृदय उल्लास से भर गया। इक्कीस उपवास करने हैं, कब से करने हैं, कैदी की हैसियत से मेरा धर्म क्या है—सब साफ समझ में आ गया। इतना नहीं करूंगा तो हरिजन-सेवा के काम में गंदगी घुस जायेगी।''

''और मेरे अकेले के मरने से काम नहीं चलेगा। चल जाये तो मेरा महापुण्य माना जायेगा। परंतु बात तो त्रास (आतंक) पैदा करने की है। हिंसक भी क्या करता है? लोगों के मन में त्रास पैदा करता है। अहिंसक भी यही करता है। दूसरा उपाय नहीं। हृदय दूसरी तरह से हिलता ही नहीं! जैसे हजारों की हत्या होती है और 'ओह!' कहते हुए हम जाग उठते हैं, वैसे ही हजारों मरने को तैयार हो जायें, तभी चमत्कारी असर होगा। उपवास की छाया के नीचे तो पाप की बड़ी-बड़ी परतें उखड़ जायेंगी। और लोगों की आंखों पर पड़ा पर्दा उठ जायेगा।''

देवदास : यह सब आप भले ही समझाइए। पर मुझे तो यह वचनभंग लगता है। आपसे कई बार कहा, पूना-करार का अमल होने दीजिए। अभी उसे छः महीने भी नहीं हुए, और आप वचन दे चुके हैं कि मैं इस तरह एकाएक उपवास नहीं करूंगा। आपको और कुछ सूझता ही नहीं। घुम-फिरकर आप उपवास पर ही आ जाते हैं! मैं आपसे कहता हूं, आपका यह वक्तव्य पढ़कर मुझपर बड़ा खराब असर हुआ है। आप मानते हैं कि लोगों में जागृति आयेगी, पर मैं कहता हूं कि इससे दंभ पैदा होगा!! आपकी भूलों से किसी की आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी।

आप हमारे साथ अन्याय कर रहे हैं। हमें नाहक इतनी बड़ी सजा दे रहे हैं। साफ-साफ यह कहने के बजाय कि अब मैं निराश हो गया हूं, आप कहते हैं कि मैं आत्मशुद्धि के लिए उपवास कर रहा हूं!! सारी चीज मुझे सड़ी हुई मालूम होती है!

बापू खिलखिलाकर हँसते जाते हैं।

देवदास : इस तरह बात को हँसी में क्यों उड़ाते हैं? आप जब मुझे नहीं समझा सकते तो दूसरे आपकी इस बात को समझेंगे? आपसे बहस में कोई जीत नहीं सकता।

बापू :...सम्भव है इसमें दंभ हो, लेकिन तब तो मेरा ऐसा अंत होना ही चाहिए।

देवदास : आप ऐसी-ऐसी बातें कहकर जिस चीज का बचाव नहीं हो सकता, उसका बचाव करते हैं! यह तो साफ मूर्खताभरी बात है।

बापू : एक करोड़ मूर्ख मूर्खतापूर्ण उपवास करें और बाद में एक सच्चा मनुष्य उपवास करे तो वह जगत का उद्धार कर देगा।

देवदास : किन्तु कोई तारतम्य भी होगा कि नहीं?

बापू : अरे भाई! तिनके पर मेरु को धारण करने वाले की तारतम्य बुद्धि कुछ और ही तरह की होगी न?

महादेव : आप इस बात को जब अटल बताते हैं, तब फिर दूसरे की हिम्मत ही क्या जो आपके साथ बहस करे? सच कहूं तो क्या आपके साथ कोई झख मारने को बहस करे? आप तो सबको बेवकूफ समझकर एक निश्चय कर लेते हैं और कह देते हैं, ''लो, यह अटल है!''

बापू : महादेव, महादेव! तुम इतना क्यों नहीं समझते कि अटल का अर्थ यह नहीं कि नीति की कसौटी पर कसने से वह ठीक मालूम न हो तो भी मैं बदल नहीं सकता। पर कोई बता तो दे कि यह उपवास गलत है!

महादेव : गलत बात क्यों कर रहे हैं? सुबह ही तो आप सरकार को तार दे चुके हैं।

बापू : मैंने ऐसे निश्चय कभी बदले नहीं हैं क्या?

महादेव : उपवास का निश्चय कभी बदला है?

बापू : नहीं। पर यह तो इसलिए कि कोई यह बता नहीं सका है कि उपवास गलत है।

देखो, दक्षिण अफ्रीका में जब समझौता हुआ, उस वक्त एण्ड्रूज से मैंने कहा, यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया जा सकता। फिर मैंने वैसा जवाब भी दे दिया। जनरल स्मट्स के घर से लौटते वक्त पहाड़ी पर से उतरते हुए मुझे आवाज सुनायी दी, ''यह क्या मूर्खता कर रहे हो? यह तो ठीक है!'' मैंने तुरंत ही एण्ड्रूज को खड़ा रखकर कहा, अरे चार्ली, मैं तो बेवकूफी करने जा रहा था। फिर स्मट्स से भी यही बात की और उससे माफी माँगी।

इसी तरह बारडोली के वक्त हुआं रेडिंग को खबर दे चुके थे। पर देवदास का पत्र आया और मैंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। दुनिया की हँसी भी सहन कर ली।

महादेव : लेकिन आप कहते हैं कि आपकी भूल आपको बतायी जाये। आप तो इस तरह त्रास पैदा करके दुनिया की भूल बताकर उसे सावधान करना चाहते हैं। पर हम आपमें कैसे त्रास पैदा करके समझायें कि आपकी गलती हो रही है!

बापू : यह तो तुम जानो। तुम्हें कोई तरीका ढूंढ़ना चाहिए। सच बात तो यह है कि उपवास की शस्त्र के रूप में प्रतिष्ठा लोप हो गयी है, इसलिए वह तुरंत समझ में नहीं आती।

देवदास : आप घुमा-फिराकर उसी बात पर आ जाते हैं। जब निश्चय ही करके बैठे हैं तो फिर दलीलें और कारण तो मिल ही जाते हैं!

बापू : अरे भाई, मुझे उपवास करने की फुरसत नहीं है। मेरी कलम भी नहीं रुकी, जबान भी नहीं थकी, काम का ढेर पड़ा है। पर उपवास आकर सामने खड़ा ही हो गया, तब क्या किया जाये? और मुझे तो बच्चा भी समझा सकता है। भाई, जिस पाप को धोना है, उसके लिए यही उपाय हो सकता है। इस तरह कई लोग उपवास करेंगे, तभी यह पाप धुलेगा। पर तू चाहे तो बुला ले राजाजी को, मथुरदास को। मथुरदास तो ऐसा है कि जो अच्छी से अच्छी बातों में से भी दोष निकाल दें।

देवदास : अच्छी से अच्छी बात में दोष तो आप निकाल रहे हैं! मुझे ऐसों की जरूरत नहीं।

बापू : तो विनोबा को बुलवा ले। वह मुझे समझा दें कि भूल हुई है तो मैं जरूर उपवास छोड़ दूंगा।

काका (कालेलकर) : निवेदन तीन बार पढ़ गया। आप जब ईश्वर का आदेश है, ऐसा कहते हैं, फिर कुछ कहने का बचता नहीं। फिर भी मुझे इस उपवास में कठोरता और उतावली लग रही है। उसके पहले दुनिया को नोटिस दीजिए, कुछ कर दिखाने के लिए थोड़ा समय दीजिए। यह उपवास गलत है ऐसा मैं नहीं कहता, लेकिन असमय है ऐसा लगता है।

बापू : यह उपवास बिलकुल ही अलग

प्रकार का है। आपने पढ़ा, लेकिन उस पर सोचा नहीं। उसमें नोटिस की दरकार नहीं। उसमें तो बहुत कुछ समाया हुआ है। मेरी कल्पना में तो गंगातीर पर की कांवर की भांति इस उपवास की श्रृंखला का अंत ही न हो, जब तक कि अस्पृश्यता का पूरा का पूरा नाश न हो।

काका : आपके साथ दलील करने से क्या निकलने वाला है? यही कि आप अपनी भूमिका में और अधिक मजबूत बनेंगे! मैंने तो अभी तक यही देखा है।

बापू : मुझे तो प्रायश्चित करना है। नैतिक हेतु सिद्ध करने के लिए साधन भी नैतिक होने चाहिए। मैंने कह दिया है, मुझसे बहस न करना। मेरा निश्चय है। ऐसे ही पिछले (1924 में हिन्दू-मुस्लिम एकता के संबंध में) 21 दिन के उपवास के समय सब हक्के-बक्के रह गये थे न! किन्तु क्या कोई यह कह सकेगा कि वे उपवास गलत थे? मुझे तो लगता है कि उन उपवासों ने उस समय तो काम किया ही, किन्तु 5000 साल के बाद भी वे उपवास काम करेंगे!!

राजाजी : आप तो यह मानते दीखते हैं कि देहदमन और प्रतीतियों के बीच गूढ़ संबंध है। ऐसे देहदमन के विरुद्ध बुद्ध ने पहली आवाज उठायी थी।

बापू : सच्चा उपवास तब माना जाता है, जब चित्त और आत्मा का शरीर के साथ सहयोग हो। बुद्ध ने जो आपत्ति की थी, वह केवल शरीर के उपवास के विरुद्ध थी।

राजाजी : दस दिन के बाद क्या आप स्पष्ट विचार करने की शक्ति रख सकेंगे?

बापू : पहले तो मैंने रखी थी। शुद्ध उपवास में विचार ज्यादा पवित्र हो जाते हैं। जिस आदमी का चित्त ईश्वर में लगा होता है, उसे जो चीजें शुरू में अंधकारमय दीखती हैं, वे धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती है।

राजाजी : यह एक खास हद तक ही सच माना जा सकता है।

बापू : यह कहने में आप खतरनाक भूमिका ले रहे हैं। वैज्ञानिक का अनुभव आपको मानना चाहिए। जो मनुष्य पवित्र है, सत्यपरायण है और सत्य पर ही कायम रहना चाहता है, वह भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के जैसा ही वैज्ञानिक है।

राजाजी : पर यह तो अस्वाभाविक स्थिति कही जायेगी।

बापू : पशुओं के लिए अस्वाभाविक हो सकती है, मनुष्य के लिए नहीं। आपको अदृश्य का दर्शन करना है तो अदृश्य होना पड़ेगा।

राजाजी : आपको अदृश्य का दर्शन करना है?

बापू : हां, क्योंकि मुझे हरिजनों की सेवा उत्तम रूप से करनी है। सोलह करोड़ मनुष्यों के हृदय तक असर पहुंचाना ही चाहिए।

राजाजी : इन गूढ़ बातों की भी एक हद होती है।

बापू : मुझे गूढ़ तत्त्व से शर्म नहीं आती। आप तो यह कहना चाहते हैं कि गूढ़ तत्त्व मानना हानिकारक है!

राजाजी : हां, अगर उसका परिणाम मौत होता हो।

बापू : आप तो दूध और दही दोनों में पैर रखना चाहते हैं। बहस के लिए मैं कहता हूं कि आपकी बात मुझे मंजूर है कि आत्मघाती उपवास गलत है। लेकिन सब उपवास ऐसे नहीं होते। और यह उपवास मैंने स्वेच्छा से अपने ऊपर नहीं लिया। इसके लिए मुझे आदेश मिला है।

राजाजी : ठीक है। इस मामले में मित्र आपको सलाह दे सकते हैं क्या?

बापू : अवश्य।

राजाजी : जिसमें मृत्यु की संभावना 80% है, वह एक प्रकार का जुआ ही है। आप कहेंगे कि यह अच्छा जुआ है। और आप में प्रयोग करने का कुतूहल इतना दुर्दम्य है कि अब मौत के साथ भी उसे आजमा रहे हैं। खैर, ऐसा कोई है, जो आपके इस कदम को पसंद करते हैं?

बापू : जरूर। डंकन और एण्ड्रूज ने इसे पसंद किया है।

राजाजी : उन लोगों के अभिप्राय की कितनी कीमत समझी जाये? इनसे तो मेरी राय कितनी ही बढ़कर है! एण्ड्रूज को कमरे को ताला लगाना नहीं आता है और वे जीवन को ताला लगाने की बात करते हैं!

और आप भी ईश्वर के कानून पूरी तरह जानने का दावा कैसे कर सकते हैं? मैं तो कहता हूं कि आप ज्यादा सावधान रहें। ईश्वर की प्रेरणा हमेशा नहीं मिल सकती।

बापू : तो आप ईश्वरी प्रेरणा की संभावना तो मानते हैं न! इसलिए आप केस हार गये!

राजाजी : किन्तु बुद्धि के विरुद्ध प्रेरणा नहीं हो सकती।

बापू : मेरी बुद्धि के विरुद्ध नहीं है। धर्म भीतरी समझ की चीज है। वह हृदय की बात है। श्रद्धा की बात है। सनातन मूल्य की बात है। शरीर के रूप में हमारा कोई सनातन मूल्य नहीं है।

फिर बापू राजाजी के साथ खूब लड़े, झगड़े, आग बरसायी और क्रोध तथा आवेश के साथ बोले, "मेरी प्रतीतियों का आपको आदर करना चाहिए। आप तो मुझे अपनी प्रतीति एकाएक छोड़ देने को कहते हैं! मेरे साथ लड़िये, बहस कीजिए, संभव है मैं भूल करता हूं। पर आप तो मुझे संभावित वस्तु को निश्चित रूप में मानने को कहते हैं! अगर मैं इस निश्चितता के साथ उपवास करता हूं कि इस उपवास से मेरी मौत हो जायेगी, तो मैं झूठा हूं। जब तक आप मेरे विधानों को लेकर मुझे विश्वास न दिला दें कि इस चीज में मेरी भूल है, तब तक आपको मेरा विश्वास विचलित नहीं करना चाहिए। कोई भी मनुष्य ईश्वर के जैसी निश्चितता प्राप्त नहीं कर सकता। पर अपनी नाव का खेवैया तो मैं ही हो सकता हूं न?

रात को बापू को बहुत अफसोस हुआ। सबेरे दो बजे उठकर राजाजी को माफीनामा लिखा।

उपवास शुरू होने के पहले मीराबहन को बापू ने लिखा, *"इस बार मेरे अंदर ऐसा आनंद प्रकट हुआ है, वैसा मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया। यह उपवास ईश्वर की अब तक की मुझे दी हुई भेटों में से सबसे बड़ी भेंट है। खुराक न लेना उपवास का अनिवार्य अंग जरूर है, पर उसका सबसे बड़ा अंग नहीं है। बड़े से बड़ा अंग तो प्रार्थना, ईश्वर के साथ एकतार होना है।"*

('मैत्री', जनवरी, 2014) ❑

आधी आबादी

गिरते सामाजिक मूल्यों में पिसती नारी

❑ प्रतिभा सिंह

स्त्री के सहयोग के बिना यदि कोई विकास कार्य किया गया है तो वह आधी मानव जाति के प्रतिनिधित्व के बिना किया गया विकास कार्य है, जो अपनी पूर्ण स्थिति को प्राप्त नहीं है। किसी भी देश की स्त्री जाति की दशा उस देश की स्थिति दर्शाती है। ख्यात साहित्यकार महादेवी वर्मा ने लिखा है कि ''पुरुष अकेला हो सकता है, परंतु स्त्री अनेक संबंधों का केन्द्र होने के कारण एक संस्था के समान है, अपने सृजन और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण नारी जीवन के कोमल, रहस्यमय और विकासशील पक्ष का पर्याय है।' हमें स्वाधीनता मिले कई वर्ष हो चुके हैं, किन्तु आज भी हम, जब विकास की यात्रा पर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए यह देखते हैं कि जो यात्रा में दमित, उपेक्षित और पिछड़ापन का शिकार था, वह कमोबेश आज भी उसी स्थिति को झेल रहा है। इक्कीसवीं सदी को नारी-सदी के रूप में देखा जा रहा है। स्त्रियां घर चहारदीवारी लांघ कर समाज में अपना योगदान दे रही हैं। एक ओर जहां विकास, नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं सांस्कृतिक खुलापन बढ़ा है वहीं दूसरी ओर नारी अस्तित्व पर आक्रमण बढ़े हैं। यह भ्रूण हत्या, बलात्कार, दहेज हत्या व अन्य वारदातों के रूप में समय-समय पर होते रहते हैं। नये कानून एवं न्यायिक निर्देशों के बावजूद भी, सामाजिक अपराधी उनको तोड़ने के हथकंडे अपना रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सब कुछ सरकारों पर ही छोड़ दिया गया है। सरकारें नीतियां बनाती हैं पर अमल तो समाज के लोगों को करना होता है। समाज में गिरते मानवीय मूल्य ने समाज में नारी के प्रति उपभोक्तावादी, बाजारवादी एवं शोषणवादी नजरिया बढ़ाया है। हो सकता है इसे बाजारवादी विचारक खुली संस्कृति का हिस्सा कहें, परंतु समाज का आधार 'गांव' जहां देश बसता है, न ही इस खुलेपन को स्वीकार करते हैं, न ही नियमों को मानते हैं। अतः पिसती हैं स्त्रियां। एक ओर वह मार्केटिंग की वस्तु बन गयी है तो दूसरी ओर पुरुषों की इच्छा पूर्ति का जरिया। छेड़खानी, अपहरण, बलात्कार, हिंसा, नशाखोरी इत्यादि दिनों दिन बढ़ती जा रही है। सभी अपराधों में स्त्री ही प्रभावित पक्ष है। युवजन 'ऑनर कीलिंग' में मारे जा रहे हैं। आज नैतिक मूल्य धरातल के गर्त में खो गये हैं और औद्योगीकरण, वैश्वीकरण ने हमारी सभ्यता, संस्कृति, परम्पराओं को निगल लिया है। गिरते मानवीय मूल्यों ने जहां एक ओर पारिवारिक संबंधों की नींव हिला दी है, वहीं उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद को बढ़ावा दिया है। एकल परिवार की संस्कृति को जन्म मिलने से जहां वृद्ध महिलाएं उपेक्षित हुई हैं, वहीं एकाकी परिवारों की युवा महिलाओं में भी असुरक्षा का भाव उत्पन्न हुआ है। परिणामस्वरूप अपराध और हिंसा बढ़ी है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार व समाज खुले मन व समझ-बूझ के साथ ऐसी नीतियां बनायें, जिनमें स्वयं नारी की भागीदारी रचनात्मक रूप से हो।

आज संघर्ष देखने को मिल रहा है। मुख्य विचारणीय बिन्दु यह है कि यह संघर्ष किसके द्वारा होना चाहिए और किस तरह का होना चाहिए। एक तो उन स्त्रियों का संघर्ष जो घर से निकली ही नहीं, जिनके मन में समाज, समुदाय और देश के प्रति उनके अर्थपूर्ण योगदान के परिणामों को जानने-समझने की सामर्थ्य या इच्छा का अभाव है, और जिनकी दुनिया पति और परिवार के सदस्यों के दिशा-निर्देशों का पालन मात्र के ही इर्द-गिर्द है। वे लड़ रहीं हैं—मूलभूत सुविधाओं के लिए या पर्याप्त मान-सम्मान के लिए; जिनकी वे एक सामान्य जीवन जीने के लिए एक मानव होने के नाते अधिकारी हैं। दूसरे, वे महिलाएं संघर्ष कर रही हैं जो पढ़ी-लिखीं हैं और समाज में सक्रिय योगदान हेतु तत्परता के साथ-साथ पुरुष बनने की होड़ में हैं। एक तीसरे प्रकार का संघर्ष है जो उन महिलाओं द्वारा किया जा रहा है जो न केवल स्त्री जाति की ही हिमायती हैं बल्कि हर क्षेत्र में परिस्थितियों और अवरोधों को धता बताते हुए मिसाल कायम कर रही हैं। इसका प्रमुख उदाहरण हैं पूर्वोत्तर क्षेत्र की महिलाएं जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के बावजूद रोजगार परक कार्यों से जुड़कर आर्थिक रूप से सक्षम बन रही हैं।

आज तीसरे तरह की लड़ाई की ही आवश्यकता है, यह लड़ाई भी तीन स्तर पर होनी चाहिए। पहली, उन लोगों के खिलाफ जो महिलाओं को अपनी सम्पत्ति समझते हैं, जैसे उन्होंने उन्हें खरीद लिया है; वे जैसे चाहें इस्तेमाल कर सकते हैं, उन पर कोई लगाम नहीं है। दूसरी, समाज के खिलाफ जहां महिलाएं आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक रूप से तो समृद्ध हैं किन्तु अपने मान-सम्मान एवं आजादी के लिए लड़ रही हैं। तीसरी वहां,

जहां नियम-कायदा-कानूनों ने उन्हें उपभोक्ता कम उत्पाद ज्यादा बना दिया है—महिलाओं के नाम पर आरक्षण, इंदिरा आवास योजना, महिलाओं के नाम पर सम्पत्ति में छूट, विधवा पेंशन जैसे प्रावधान आदि, वे स्वयं वस्तु बना दी गयी हैं—पुरुषों के उत्पाद महिलाओं के माध्यम से दिखाना, उपभोक्ता वर्ग को लुभाने के लिए विज्ञापनों में महिलाओं का इस्तेमाल करना। अगर देखा जाये तो स्त्री विकास है कहां? क्या ग्राम पंचायतों में पचास प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षण, मनरेगा में सौ दिन के रोजगार या विधानसभा में आरक्षण ने उनको वास्तव में आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की है? शायद नहीं। यदि ऐसा होता तो प्रधानपति, पंचायत पति जैसी संकल्पनाएं नहीं उभरतीं। अधिकारों को न जानना उतना बुरा नहीं है जितना कि अधिकारों को जानते हुए भी बुत बने रहना। यहां पर जिन महिलाओं की बात की जा रही है वे मध्यम वर्ग या निम्न मध्यम वर्ग से आती हैं।

एक खबर के मुताबिक उत्तर प्रदेश के एक जिले में जिला पंचायत की अध्यक्ष एक सांसद की नौकरानी थी, जिसे मीटिंग में न ही बोलने की इजाजत थी, न ही कोई निर्णय लेने की हिम्मत। उसका साराकाम-काज सांसद के इशारों पर ही होता था। एक अन्य खबर के अनुसार एक प्राइमरी शिक्षिका दस वर्ष से शिक्षण कार्य करते हुए भी न अपना बैंक एकाउंट संचालित कर सकती है, न ही अपना कोई अर्थ संबंधी निर्णय ले सकती है। यहां तक कि एक लाख रुपये जैसे अंतरण को उसके शिक्षक पति द्वारा ही उसकी बिना सहमति एवं अनुमति के, उसके जाली हस्ताक्षर बनाकर, अंतरित कर दिया जाता है। यह कैसी आर्थिक स्वतंत्रता है? यह आजादी नहीं बल्कि संपूर्ण नारी समाज का अपमान है। रूढ़ियां स्त्रियों की नहीं बल्कि उन शैक्षणिक रूप से सशक्त, लोकतांत्रिक रूप से समृद्ध महिलाओं के अधिकारों पर कब्जा जमाये बैठे ठेकेदारों की तोड़नी होंगी, जो महिलाओं को उनके हिस्से का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्मान नहीं देना चाहते। ऐसे समाज के सामंती सोच वाले लोगों का नजरिया बदलने की आवश्यकता है। नैतिकता-शालीनता-मर्यादा के सारे प्रतिमान टूट जाते हैं जब बड़े-बड़े शहरों में, जहां कहा जाता है कि पढ़े-लिखे सभ्य लोग रहते हैं और जेसिका लाल हत्याकांड, आरूषि हत्याकांड, प्रियदर्शिनी मट्टू कांड, नैना साहनी हत्याकांड, मधुमिता हत्याकांड जैसी घिनौनी मानसिकता वाली घटनाएं होती हैं। सामाजिक यंत्रणा, दुःख, शोषण, उत्पीड़न से घिरी स्त्रियां इसी अवमूल्यन का शिकार हैं। यदि स्वतंत्रता और खुलेपन की कीमत इस तरह से महिलाओं को चुकानी पड़ेगी तो यह प्रत्येक दृष्टि से समाज के गिरे हुए स्तर तथा अल्पविकसित मानसिकता को दर्शाता है। 'द हिन्दू' में छपी एक खबर के अनुसार भगवान कृष्ण की पावन भूमि वृन्दावन में संचालित सरकारी आश्रय गृहों में अनाथ महिलाओं के मरने के बाद उनके शरीर के टुकड़े करके स्वीपरों द्वारा जूट की थैलियों में भरकर यूं ही फेंक दिया जाना तथा एक अन्य खबर के मुताबिक नागपुर में नशे की हालत में दामाद द्वारा अपनी सास के साथ बलात्कार किया जाना; जैसी घटनाएं महिलाओं के प्रति गैर सम्मानजनक नजरिया दर्शाती है। साथ-ही-साथ मानवीयता के अवमूल्यन एवं संवेदनशीलता के मरते जाने की बात चरितार्थ कर रही है। आज समाज को मानसिक रूप से समृद्ध होने की आवश्यकता है। इसमें किसी वर्ग विशेष की बात नहीं की जा सकती क्योंकि अपराधी हर वर्ग में है। अनपढ़ से लेकर पढ़े-लिखे धनाढ्य परिवारों में भी घटनाएं हो रही हैं। भ्रूण हत्या जैसे अपराध का जन्म तो मध्यम वर्ग एवं उच्च मध्यम वर्ग के ही परिवारों की पृष्ठभूमि में ही हुआ है। जहां तक सामाजिक मूल्योत्थान की बात है शिक्षक, साहित्यकार, शिक्षण-संस्थाएं अपने पाठ्यक्रमों एवं शिक्षण के माध्यम से, साहित्यकार नाट्य संग्रह, काव्य संग्रह, स्क्रिप्ट, कथानक, उपन्यास, कहानी संग्रह, विभिन्न शैलियों में उनका मंचन के माध्यम से एवं प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फिल्मी दुनिया आदि के माध्यम से समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जा सकता है। समाज हमेशा परिवर्तन-शील रहा है, समाज बदल रहा है किन्तु परिवर्तन सकारात्मक आना चाहिए न कि नकारात्मक, जैसा कि देखने को मिल रहा है। कानून का निर्माण आसान है लेकिन कानून भी बहुत सार्थक सिद्ध नहीं होंगे, जब तक समाज का महिलाओं के प्रति सम्मानपूर्ण नजरिया नहीं होगा। उसके लिए उन्हीं सामाजिक मूल्यों की ओर लौटना होगा, जहां एक घर की बहू पूरे गांव की बेटी होती थी, एक घर की बहू पूरे गांव की बहू होती थी। उसी तरह के समाज का निर्माण करने की जिम्मेदारी हम सबकी है। इन सबका एक भेदक तत्त्व है—पहल। एक ऐसी पहल जो संघर्ष के रूप में हो, जो समाज को धीरे-धीरे परिवर्तित करे।

सम्मान, स्वतंत्रता व अधिकारों पर हर मानव का बराबर का अधिकार है। इसे स्त्री-पुरुष के खेमे में नहीं बांटा जा सकता। महात्मा गांधी का कहना था कि स्त्रियों के प्रति समाज में बदलाव के नजरिये द्वारा ही सामाजिक मूल्यों की पुनर्संरचना की जा सकती है। उनके शब्दों में महिलाओं को कमजोर कहना, उनका अपमान करना है। वे महिलाओं की स्वतंत्रता की वकालत करते थे; ताउम्र उनकी स्थिति सुधारने की बात करते रहे। अतः गांधीजी के सपने को साकार करने के लिए आज सार्थक प्रयास करने होंगे, जिससे न केवल हम आज के समाज को गर्त में जाने से बचायेंगे वरन् अपने देश को भी समृद्ध बनायेंगे। ❑

(अंतिम जन, वर्ष 1, अंक 7, अगस्त 2012)

मातृरूपा नारी

❑ किशनगिरि गोस्वामी

सूरज का नूर, चांद का चेहरा हैं बेटियां,
फूलों की महक, तितलियां और परिन्दा है बेटियां।
गर फुरसत मिले, तो गौर से पढ़ लेना इन्हें,
गीता-कुरान और बाईबल हैं बेटियां।

नारी ईश्वर की अनूठी देन है। वह ममता, स्नेह, वात्सल्य, कोमलता, त्याग और सहनशीलता की बेमिसाल उदाहरण हैं। वहीं बलिदान, मानसिक दृढ़ता, साहस और समन्वय उसकी विशिष्ट पहचान है। नारी धरती सदृश्य है—वह सृष्टि रचती है और दुख सहती है। सृजन की पीड़ा और दुख को उससे बेहतर कोई नहीं समझ सकता। यह कैसी विडम्बना है कि जिस नारी की नवरात्र में दैवी के रूप में उपासना होती है, उसी नारी को मानव रूप में संकीर्ण सोच और कुप्रथाओं के कारण अपमान द्वितीय श्रेणी नागरिक समझे जाने के भेदभाव झेलने पड़ते हैं। एक राजस्थानी कवि ने मातृरूपा नारी की विडम्बनाओं का सांगोपांग मर्मस्पर्शी चित्रण किया है :

मां, थारो मरणो तो जुग दो मरणो है।
जुड़थोड़ी कड़ियां टूटती देखण ने, आंख तो ही, निजर नी ही मां। थारो घर, धणी री आंख मांय बसतो हो, अर नो, फेर लेते मूण्डो, जचती जद। थनै तो, ऊची लाया हा मां, आड़ी काढ़ण नै।

एक बच्चे ने जन्म से कुछ क्षण पूर्व भगवान से पूछा—मैं इतना छोटा हूं, खुद कुछ भी नहीं कर सकता, भला धरती पर मैं कैसे रहूंगा? भगवान बोले—मेरे पास बहुत सारे फरिश्ते हैं, उन्हीं में से एक मैंने तुम्हारे लिए चुन लिया है। वह तुम्हारा हर तरह से ख्याल रखेगा, तुम्हारे लिए मुस्करायेगा, गायेगा। तुम उसका प्रेम महसूस करोगे और खुश रहोगे। तुम्हारा फरिश्ता तुमसे मधुर और प्यारे शब्दों में बात करेगा। वह बड़े धैर्य और सावधानी के साथ तुम्हें बोलना सिखायेगा। वह अपनी जान पर खेल कर भी तुम्हें बुरे लोगों से बचायेगा। बच्चे ने पूछा—कृपया उस फरिश्ते का नाम तो बताइए? भगवान बोले—फरिश्ते के नाम का कोई महत्त्व नहीं। बस इतना जानो कि तुम उसे 'मां' कहकर पुकारोगे।

यह मां सदा हमारे साथ रहती है। जब कभी तुम अस्वस्थ महसूस करोगे, मां का प्रेम भरा हाथ तुम्हारे माथे पर महसूस होगा। मां को तुम अपने आंसुओं के कणों में पाओगे। समय, स्थान और मृत्यु भी मां को अलग नहीं कर सकता। मां तो एक ही होती है। उसका निरपेक्ष स्नेह हमेशा हमारे साथ रहता है। मां के ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। *'माता का हृदय एक स्नेहपूर्ण निर्झर है, जो सृष्टि के आदि से अनवरत झरता हुआ, मानवता का सिंचन कर रहा है'*—रस्किन। इस पृथ्वी पर दैवी तत्त्व का एकमात्र प्रतीक मातृत्व है। उसके प्रति उच्च कोटि की श्रद्धा रखे बिना दैवत्व की पूजा एवं साधना नहीं हो सकती, और इसके अभाव में पुरुष को देवत्व से वंचित रहना पड़ेगा। नारी कामधेनु है। जब हम उसे मातृबुद्धि से देखते हैं, तो वह हमें देवत्व प्रदान करती है, पर जब उसे वासना, सम्पत्ति या दासी की नजर से देखते हैं तो वह हमारे लिए अभिशाप बन जाती है। इसीलिए हम मातृरूपा नारी को बारम्बार नमन करते हैं। मानव जीवन की समस्त संभावनाओं के मूल में 'मां' का असीम प्यार, उसका त्याग, उसकी महान सेवाएं निहित हैं। हमारा भी फर्ज बनता है कि इस मां को मां बनने की आजादी मिले। एक कवि द्वारा ममतामयी मां की विरुदावली दृष्टव्य, स्मरणीय और मननीय है :

मां कबीर की साखी जैसी, तुलसी की चौपाई सी,
मां मीरा की पदावली-सी, मां है ललित रुबाई सी!
मां वेदों की मूल चेतना, मां गीता की वाणी सी,
मां त्रिपिटक के सिद्ध सूक्त सी, लोकोत्तर कल्याणी सी।
मां द्वारे की तुलसी जैसी, मां बरगद की छाया सी,
मां कविता की सहज वेदना, महाकाव्य की काया सी।

जब भी उठे हाथ, दुआ के लिए ही उठे, क्योंकि वह ममता की मूरत है, क्योंकि वह साक्षात ममता है, क्योंकि वह मां है। मां की खुशी तो इसमें है कि संतान सदा सुखी रहे। बस संतान की आंखों में पानी होना चाहिए। मां तो संतान की आंखों में उतरे थोड़े से जल में डुबकी लगा लेती है। दुनिया भले ही बदल जाय, मां नहीं बदलती। उसकी ममता दस बच्चों में बंटकर भी खंडित नहीं होती। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहब ने भी कहा है—*'मां वो हस्ती है, जिसके कदमों में जन्नत है।'* विश्व विख्यात अंग्रेज लेखक एच. जी. वेल्स को उनके मित्र ने पूछा—आप स्वयं मकान की तीसरी मंजिल के एक साधारण से कमरे में रहते हैं, जबकि निचली मंजिल पर आलीशान कमरे हैं? उन कमरों में मेरे नौकर रहते हैं। वेल्स ने उत्तर दिया। आपने नौकरों को आलीशान कमरे दिये हैं, जबकि आम तौर पर नौकरों को सबसे खराब कमरा दिया जाता है? मित्र ने पूछा—तो वेल्स ने उत्तर दिया—क्योंकि मेरी मां लंदन के एक घर में नौकरानी थी। वह किसी भारतीय की नहीं बल्कि अंग्रेज की अपनी मां के प्रति श्रद्धा का अनुपम उदाहरण हैं।

आज के दौर में नारी निरंतर प्रगति कर रही है। आत्मविश्वास से लबरेज कदम रखते हुए वह देश-विदेश के परिदृश्य में सफलता के नित नये कीर्तिमान बना रही है। ऐसी विलक्षण नारी शक्ति को हम नमन करते हैं। आइए, संकल्प करें कि प्रत्येक नारी को उसकी क्षमतानुसार आगे बढ़ने में हम भरपूर सहयोग करेंगे ताकि वह अपने साथ अपने देश का नाम भी रोशन कर सके और बना सके अपनी नई पहचान। जरूरत है, हमें अपनी सोच बदलने की।

नजरिए को सुधारें, तो नजारे बदल जायेंगे,
सोच को सुधारें, तो सितारे बदल जायेंगे।
तुम्हें जरूरत नहीं है, कश्ती को बदलने की यारों,
कश्ती के रुख को बदलो, किनारे बदल जायेंगे।

❑

मुस्लिम माता

❑ सीताराम सेकसरिया

मुसलमान लड़कियों का एक स्कूल देखने गये। स्कूल अच्छा था पर मुसलमान समाज में परदा प्रथा का बहुत जोर है, इसलिए छोटी बच्चियों के सिवाय क्या देख सकते थे। पर सबसे बड़ी बात यह देखने को मिली कि 65-70 वर्ष एक बूढ़ी मां अपने को आशीर्वाद देते हुए सामने आयी और उसने उर्दू मिश्रित सुंदर हिन्दी में धर्म की और मुसलमान धर्म की अनेक बातें कहीं, स्कूल की स्थिति समझायी। उनके कहने का ढंग तथा भाषा प्रभाव डालने वाली थी। वहां जो अध्यापिकाएं थीं, उनको वह आर्डर देती थीं, अमुक तरह का भजन सुनाओ, अमुक तरह का खेल दिखाओ आदि। मुसलमान समाज आज बहुत पिछड़ा समाज है, धार्मिक कट्टरता अधिक है पर तो भी कुछ खास काम नहीं हो रहा है। लड़कियां भी पढ़ने लगी हैं, यह शुभ चिह्न है। हमने लड़कियों को मिठाई दी और उस माता ने हमको इलायची, पान दिया। कहने लगी कि आपको शरबत और चाय तो दे नहीं सकते, क्योंकि आप हमारे हाथ का कैसे खायेंगे। हमने कहा, माताजी मैं तो आपके हाथ की बनी रोटी खाऊंगा। वह बहुत खुश हुई। कहने लगी, अल्लाह आपको सलामत रखे। बेटा हम लोगों में यह भेदभाव है उसको मिटाने की बड़ी जरूरत है। इस माता को देखकर सुख और आश्चर्य हो रहा था कि मुसलमान समाज में इतनी बूढ़ी स्त्री के ऐसे विचार हैं।

प्रभु की जब इच्छा होगी तब हिन्दू और मुसलमानों में सद्भाव होगा। उस दिन देश का मंगल होगा। सात या नौ करोड़ मुसलमानों को हिन्दू देश से निकाल नहीं सकेंगे, इसको कट्टर मुस्लिम विरोधी भी स्वीकार करते हैं, फिर रोज की लड़ाई क्यों? अपनी समझ से हिन्दू मुसलमानों के प्रति ज्यादा अविश्वास रखते हैं और उनकी भलाई की भावना बहुत कम रखते हैं। मुसलमान कम संख्या में हैं, उनमें शिक्षा नहीं है, पैसा नहीं है। व्यापार उनके हाथ में नहीं है। बहुत से आदमी घृणित जीवन व्यतीत करते हैं। उनके मौलाना उनको बराबर हिन्दुओं के प्रति बहकाते रहते हैं। उन मौलानाओं की रोटी इसी पर चलती है, ये मौज करते हैं। जब तक अंधविश्वास रहता है, मनुष्य स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं पाता। इसलिए यह लोग मनुष्य में विचार-शक्ति पैदा हो, इसके विरोधी हैं। जब हिन्दू मुसलमानों को निकाल नहीं सकते तब उनको शिक्षा देकर उनका अंधविश्वास हटाना, मौलाना लोगों के हाथ से निकालना उनका काम है। लोग कहते हैं कि उनको दिशा दे कर भी क्या होगा, उनमें जो शिक्षित हैं वे भी ऐसे ही हिन्दू विरोधी हैं लेकिन एक बात यह है कि आदमी जैसे वातावरण में रहता है वैसे ही उसके विचार बनते हैं। दूसरी बात यह कि हरेक आदमी में कमजोरी रहती है, खास कर सामाजिक कमजोरी तो अधिकांश में रहती हैं। मुसलमान समाज में वह मुसलमान आदर नहीं पा सकता जो कट्टर विचारों का न हो, हिन्दू विरोधी न हो। समाज में अभी ऐसे ही ज्यादा आदमी हैं इसलिए समाज में अपमानित होने के डर से या दूसरे कारणों से सुर में सुर मिलाते हैं, पर मन से ऐसा नहीं चाहते। यदि समाज अच्छी तरह भलाई-बुराई का ज्ञान कर ले तो समाज के अधिकांश भाग की मनोवृत्ति बदल जाये। शिक्षा, ज्ञान तथा धनाभाव हटाने पर अपना तो पूरा विश्वास है कि इस देश में अच्छे दिन आ सकते हैं और हिन्दू-मुसलमान परस्पर में मेल से रह सकते हैं। पर, सब प्रभु की इच्छा पर निर्भर है। वह चाहेगा तब सब कुछ हो जायेगा, कुछ भी देर नहीं लगेगी।

('मंगल प्रभात', वर्ष 56, अंक 12) ❑

बा को विनम्र श्रद्धांजलि

मोहनदास करमचंद गांधी को मोहन से महात्मा के सफरनामे में अद्भुत साहस के साथ कदम-दर-कदम साथ देने वाली शक्ति स्वरूपा कस्तूरबाजी को उनकी पुण्यतिथि 22 फरवरी के अवसर पर हम श्रद्धा के साथ उन्हें याद करते हैं, जिनके अप्रतिम योगदान के कारण ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विश्व आकाश में जाज्वल्यमान सूर्य की तरह स्थापित हो सके। खेद है कि कस्तूरबा का महान व्यक्तित्व आज तक अपनी वास्तविक जन्मतिथि की अज्ञानता और भ्रम का दंश झेल रहा है, जिसके कारण हम उनके जन्म की खुशियां नहीं मना पाते। यही कारण है कि उनकी याद खुशी एवं गम दोनों रूपों में एक साथ करते हैं। वर्तमान ग्रामीण भारत में अभी भी नवबालाएं सुदूरवर्ती गांवों में जन्मतिथि की मोहताज होती हैं। महिला साक्षरता के साथ सामयिक जागरूकता दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है, सामाजिक जगत में शक्ति, धन एवं विद्या का बहुत बड़ा महत्त्व है। इनके अर्जन का खेल सफलता-असफलता का मानबिन्दु निर्धारित करता है। शक्ति, धन तथा विद्या की देवियों के रूप में दुर्गा, लक्ष्मी व सरस्वती की पूजा का चलन है अर्थात् मातृशक्ति की उपासना का अस्तित्व है। दैनिक जीवन महिला-पुरुष की परस्पर पूरकता से ही सुखद एवं समृद्ध बनता है। अस्तु कस्तूरबाजी की पुण्यतिथि पर हम महिला-पुरुष विभेद को घटाने, कन्याभ्रूण सुरक्षा को दृढ़ता से पालन करने का संकल्प करें और महिलाओं को उनकी प्रतिभा को उभरने का अवसर प्रदान करें, यही पूज्यनीया बा के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। **–शिवविजय सिंह**

संयोजक, ससेसं परिसर

गतांक से आगे

गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ?

❑ चुनीभाई वैद्य

सन् 1946-47-48 के दरम्यान उनके जो भी अनशन हुए वे हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे को बढ़ाने के लिए ही थे। भाईचारा मजबूत हो, दिल जुड़ें, तो विभाजन की बात टल सकती है—एक सत्याग्रही इसके अलावा और क्या सोच सकता है? इतना होते हुए भी कोई यह कह सकता है कि उनको विभाजन रोकने के लिए अनशन करना चाहिए था। यानी गांधीजी को ऐसा कहने वाले की बुद्धि के अनुसार ही चलना चाहिए था। खुद कुछ करना नहीं, दूसरों से अपेक्षा रखना और वह अपेक्षा पूरी न हो तो दोषारोपण करना, यह कैसी बात है?

एक दूसरा सवाल जिसका जवाब हम चाहेंगे, और जो अन्य लोगों को भी समझ में न आने वाला सवाल है। वह यह कि, ये बातें सिर्फ हिन्दूवादी ही करते हैं और साथ-साथ यह भी मानते हैं कि गांधी देशद्रोही, हिन्दूद्रोही थे, उनका वध जरूरी था। तो फिर गांधीजी से यह अपेक्षा कैसे रखते हैं कि उनकी लड़ाई गांधीजी को लड़नी चाहिए थी? क्या सावरकर, गोलवलकर, मुखर्जी, भोपटकर, मुंजे, खरे जैसे उनके हिन्दूवादी नेता नहीं थे, जो उनकी अपेक्षा पूरी करते? सत्य तो यह है कि ये लोग अच्छी तरह जानते थे कि उनके नेताओं में से एकाध को छोड़कर किसी ने भी आजादी की लड़ाई में कोई बलिदान नहीं किया, कष्ट नहीं भोगा, जनता इनका नाम तक नहीं जानती। अतः ये अनशन करेंगे तो जनता पर उसका कोई असर होने वाला नहीं है। यह शक्ति तो अकेले गांधीजी की थी। गांधीजी भारत आये तब कई हिन्दूवादी नेता सक्रिय थे। उनमें सावरकर तो उम्र में भी गांधीजी से 10 वर्ष छोटे युवक थे। दूसरे भी कई नेता थे। ये लोग गांधीजी की तरह अपनी हैसियत क्यों नहीं बना सके। इसके बावजूद झूठी और पुरानी बातें सुनाकर लोगों के दिलादिमाग में द्वेष एवं कलह के बीज बोने तथा हिंसा भड़काने के प्रयत्नों के अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई भी कार्यक्रम नहीं था।

प्रश्न : *55 करोड़ रुपये वाली बात अभी तक साफ नहीं हुई। इस संबंध में आपका क्या कहना है? क्या इसमें गांधीजी का पाकिस्तान-पक्षधर यानी कि मुस्लिम-पक्षधर दृष्टिकोण नहीं दिखायी देता?*

उत्तर : रुपयों की बात को लेकर गांधीजी को मुसलमानों का पक्षपाती मानना अनुचित है। गांधीजी युगद्रष्टा थे। उनकी दृष्टि व्यापक और जागतिक थी। देश के विभाजन के साथ ही, अंग्रेजों की मध्यस्थता में देश की चल-अचल सम्पत्ति का भी बंटवारा हुआ था। अतः स्वाभाविक तौर पर माउण्टबेटन का यह आग्रह था कि बंटवारे के समय दिये गये वचन का हमें पालन करना चाहिए। इस संबंध में गांधीजी की उनसे 6 और 12 जनवरी को बात भी हुई थी। लेकिन गांधीजी ने इस मुद्दे पर उपवास का संकल्प नहीं किया था। गांधीजी जब कलकत्ता से पंजाब जाने के लिए 9 सितंबर को दिल्ली पहुंचे, तो उन्होंने स्वयं देखा कि जिन्दादिल दिल्ली किस कदर मुर्दों का शहर बन चुका है। तत्काल ही उन्होंने फैसला कर लिया कि अब दिल्ली में रहकर ही 'करना या मरना' होगा। उपवास शुरू करने से एक दिन पूर्व उन्होंने कहा था कि पिछले तीन दिनों से उन्हें अपने अंदर से कुछ आवाज सुनायी दे रही थी, लेकिन वे किसी फैसले पर नहीं पहुंच पा रहे थे। अंततः व्यथा और वेदना की गहरायी में से ही उपवास शुरू करने का निश्चय निकला। यह भी समझना चाहिए कि गांधीजी इस बात के पक्के हिमायती थे कि 55 करोड़ रुपयों की अदायगी भारत सरकार की नैतिक जिम्मेदारी है। क्या यह कभी संभव था कि जिस व्यक्ति का संपूर्ण जीवन 'सत्य' के लिए समर्पित हो, और जिसने 'जैसे को तैसा' की नीति को त्याज्य माना हो, छल-कपट के जवाब में भी जिसने सत्याचारण और भलाई के सिद्धांतों का ही पालन किया हो, वह कसौटी के वक्त भला अपने सत्य-पथ से डिग जाता? ज्यों ही गांधीजी ने उपवास की घोषणा की, डॉ. सुशीला नैयर, जो दिन-रात गांधीजी की सेवा में जुटी रहती थीं, *''यह खबर लेकर मेरे पास दौड़ी आयी—गांधीजी ने निश्चय किया है कि अगर दिल्ली का पागलपन बंद नहीं हुआ, तो वे आमरण उपवास करेंगे।''*

पचपन करोड़ रुपयों का इसमें कोई उल्लेख नहीं था। गहरी वेदना के क्षणों में भी पचपन करोड़ रुपये का जिक्र उनकी जुबान पर नहीं आया। जाहिर है कि उपवास का वह मुद्दा था ही नहीं। उपवास के संबंध में दिये गये गांधीजी के किसी बयान में इस मुद्दे का उल्लेख नहीं मिलता।

इसलिए यह कहना सर्वथा गलत है कि उन्होंने पचपन करोड़ रुपयों के लिए उपवास किया। यदि यह मुद्दा उनके उपवास का कारण होता तो अवश्य ही उपवास शुरू करने से पहले उन्होंने इसे उपवास समाप्त करने की शर्त के रूप में सबके सामने रखा होता। लेकिन इस आशय का एक शब्द भी उनके बयानों में नहीं मिलता।

दूसरी बात कि उपवास के तीसरे दिन केन्द्र सरकार ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने की घोषणा कर दी थी, गांधीजी के पेशाब में 'एसिटोन' की मात्रा बढ़ गयी थी, जिसके कारण उनके *शरीर के तंतुओं का बिखरना प्रारंभ हो गया था। रक्त-नलियों में जहरीले तत्त्व भरने लगे थे,* जिसके परिणाम घातक हो सकते थे। लेकिन इन दो ठोस कारणों के बावजूद भी उन्होंने उपवास नहीं तोड़ा। उन्होंने उपवास तब समाप्त किया जब राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में बनी शांति-समिति ने शांति-स्थापना के लिए चार स्तरों पर कार्रवाइयां करने का विश्वास उन्हें दिलाया। उसमें 55 करोड़ रुपयों के भुगतान की कोई बात नहीं थी।

भारत सरकार की, पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपयों देने की घोषणा में भी कहीं यह उल्लेख नहीं है कि यह निर्णय महात्मा गांधी की मांग पर लिया गया है।

एक प्रश्न के जवाब में गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उनका उपवास भारत सरकार के गृहमंत्री की किसी कार्रवाई का विरोध करने के लिए नहीं है। यह उपवास भारत के हिन्दुओं और सिक्खों तथा पाकिस्तान के मुसलमानों द्वारा किये गये पाशविक कृत्यों के खिलाफ है। यह उपवास भारत और पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए है। गांधीजी के प्रार्थना प्रवचनों में इन सारी बातों का पूरा खुलासा किया गया है।

गांधीजी के अंदर इस बात की असीम पीड़ा थी कि भारत ने शांति और अहिंसा के रास्ते आजादी हासिल की, उसके बाद वह पूरी दुनिया को एक नयी और सही दिशा दे सकता था, लेकिन आज वह टुकड़ों में विभाजित होकर अपने ही भाइयों के खून की होली खेल रहा है, लोग अपनी ही मां-बहनों के साथ दुष्कृत्य कर रहे हैं, बलात्कार कर रहे हैं। भारत और पाकिस्तान, दोनों जगहों की यह स्थिति उनके लिए असह्य थी। उनके सामने दोनों देशों के बहशीपने को रोकने के लिए उपवास का ही एक अंतिम उपाय शेष रह गया था।

सबसे अधिक, उन्हें इस बात की संभावना नजर आती थी कि भारत के उदार दृष्टिकोण का दुनिया पर असर होगा। साथ ही वे अपने अंतर की गहराई से यह उम्मीद करते थे कि भारत और पाकिस्तान किसी दिन फिर से एक होंगे। और नहीं, तो कम-से-कम अच्छे पड़ोसियों की तरह दोनों शांति, प्रेम और भाईचारे के साथ रहने की स्थिति में तो आ जायेंगे!

गांधीजी का उपवास गहरी मानवीय प्रेरणा से अनुप्राणित था और वह असफल नहीं हुआ। उसका व्यापक असर हुआ। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

बरेली के एक मौलवी ने महात्मा गांधी को संबोधित करते हुए पत्र लिखा और अपने अनुयायियों के नाम फतवा निकाला, जो विशेष महत्त्व का था : *''पाकिस्तान या हिन्दुस्तान में मुसलमानों का आपसे बड़ा कोई दोस्त नहीं है।...हाल के कराची और गुजरात (पाकिस्तान) के जुल्मों, बेगुनाह औरतों और बच्चों के कत्ल, जबरन् धर्म बदलने और औरतों को भगा ले जाने की घटनाओं पर आपके साथ मेरा दिल भी खूब रोता है। ये अल्लाह के सामने किये गये ऐसे गुनाह हैं, जिनकी कोई माफी नहीं। पाकिस्तान सरकार यह जान ले। अल्लाह के खलक के खिलाफ किये जाने वाले ऐसे भयंकर गुनाहों की बुनियाद पर इस्लामी राज्य कभी कायम हो ही नहीं सकता। मैं पाकिस्तान के अपने अनुयायियों को हुक्म देता हूं और पाकिस्तान के मुसलमानों व सरकार से अपील करता हूं कि वे इस्लाम से कोई संबंध न रखने वाले इन शर्मनाक बुरे कामों को बंद करें और अपनी इन बुरी करतूतों पर तहेदिल से पछतायें। मेरे अनुयायियों और हिन्दुस्तान के मुसलमानों को मेरा यह हुक्म है...(कि) वे आखिर तक आपके और संघ की सरकार के वफादार रहें...और ऐसी कार्रवाई के खिलाफ आम लोगों में नफरत पैदा करने के लिए पाकिस्तान के अपने हममजहबों के बुरे कामों की बेलाग और जोरदार शब्दों में निन्दा करें।...मुसलमानों के लिए यह समझने का समय आ गया है कि संघ के लिए उनकी सच्ची वफादारी और उनके नेताओं का आत्मविश्वास ही एकमात्र ऐसा संरक्षण है जो उन्हें बचा सकता है। पाकिस्तान की तरफ रहनुमाई और सहायता के लिए देखते रहने की छिपी इच्छा उनका नाश कर देगी। मेहरबानी करके अपना उपवास तोड़ दीजिये।''*

पाकिस्तान में भी उपवास का असर दिखायी दिया। पाकिस्तान सरकार के पुनर्वास-मंत्री राजा गजनफर अली खान ने एक अखबारी मुलाकात में ऐसी घोषणा की : *''हाल के महीनों में भारत और पाकिस्तान दोनों में जो भयंकर नैतिक पतन सामने आया है उसका कोई कड़ा उपाय होना बहुत जरूरी था और महात्मा गांधी ने इन परिस्थितियों के खिलाफ उग्र रूप में अपना विरोध प्रकट किया है।''*

(चुनीभाई वैद्य की पुस्तक 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' से प्रकाशन क्रमश जारी रहेगा। **–कार्य. सं.**)

गतिविधियां एवं समाचार

बापू को विनम्र श्रद्धांजलि

30 जनवरी, 2015 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का 67वां शहीदी दिवस बहुत ही श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पूज्य विनोबा भावे द्वारा स्थापित प्रस्थान आश्रम, खानपुर, पठानकोट में मनाया गया। इस अवसर पर देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने वाले असख्ंय शहीदों का पावन स्मरण कर उन्हें अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये।

इस अवसर पर 'सहस्राब्धि के युग नायक गांधीजी' विषय पर उच्च कोटि की भाषण प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। स्कूल/कॉलेज की कुल 17 टीमों ने प्रतियोगिता में भाग लिया। कॉलेज वर्ग में पं. मोहनलाल कॉलेज की काजल ने प्रथम तथा शांतिदेवी आर्य कॉलेज, दीनानगर की अरुणदत्ती ने दूसरा तथा आर्य महिला कॉलेज, पठानकोट की माधुरी ने तीसरा स्थान प्राप्त की। वहीं स्कूल वर्ग में हॉलीवुड पब्लिक के रविकुमार, सावन हाईस्कूल हरियाल की शिवानी दूसरे तथा महाराणा प्रताप स्कूल की विशाली तृतीय स्थान पर रहीं।

संरक्षिका श्रीमति सुमति मित्तल ने धन्यवाद ज्ञापन करते हुए इतनी बड़ी संख्या में कार्यक्रम में पधारने के लिए सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कीं। **–यशपाल गुप्ता**

× × ×

12 फरवरी, 2015 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के श्राद्धदिवस पर ओरछा कचनार घाट में राष्ट्रपिता को श्रद्धासुमन अर्पित करने हेतु देशभर से भारी संख्या में लोग उपस्थित हुए। 1948 में गांधीजी के देहांत के बाद उनके अस्थिभस्म को बेतवा नदी में विसर्जित किया गया था। इस अवसर पर सर्वधर्म प्रार्थना सभा तथा घाट की सफाई की गयी। इसके पश्चात् एक गोष्ठी आयोजित की गयी, जिसकी अध्यक्षता स्वतंत्रता संग्राम सेनानी लक्ष्मीनारायण नायक ने की। इस अवसर पर वरिष्ठ अधिवक्ता नरोत्तम स्वामी ने कहा कि गांधीजी के विचार अमिट है। उन्होंने भेदभाव और शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्ति के साथ ही स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत किया था। इस अवसर पर दुर्गाप्रसाद आर्य ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने गांधीजी के अस्थिभस्म बेतवा में विसर्जित कर गांधीजी के स्मृति के साथ बुदेलखंड को जोड़ दिया है। इस अवसर पर दयाराम नामदेव ने गांधीजी के स्मृतिघाट सुधारने में सबके सहयोग की मांग की। यह तय हुआ कि 1-3 मई, 2015 तक ओरछा में श्रम-स्वाध्याय शिविर आयोजित हों। डॉ. कृष्णगांधी ने गांधीजी के स्वराज, स्वावलंबन पर विस्तार से चर्चा की। इस अवसर पर मातादीन जोशी, संजय सिंह, दमयंति पाणि, किशोरी भाई, सूरज पटेल, सुरेश भाई सर्वोदयी, लालजीसिंह गौर, भूपेन्द्र त्रिपाठी आदि ने विचार रखे। संचालन जशरथ भाई ने किया।

पूर्व अध्यक्ष को श्रद्धांजलि

हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष संग्राम सिंह नहीं रहे। वे 90 वर्ष के थे। आपका देहावसान 4 दिसंबर, 2014 को हुआ।

संग्राम सिंह का जन्म 15 अगस्त, 1925 को ग्राम दड़ौली, जिला हिसार के एक किसान परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री नत्थुराम पंजाब पुलिस में कार्यरत थे। एक बार उनके क्षेत्र में अकाल पड़ा था, घर में खाने-पीने तक की समस्या हो जाने के कारण वे पूरे परिवार को अपने साथ पंजाब के फिरोजपुर ले गये और संग्राम सिंह को वहां के जामिया इस्लामिया स्कूल की 8वीं कक्षा में दाखिल करा दिया। उनकी कक्षा में संग्राम सिंह के अलावा एक भी हिन्दू लड़का नहीं था। आपका आर्यसमाजी परिवार था, जहां घुटन-सी वे अनुभव करते थे और स्कूल जाने में भी आनाकानी करते थे।

1941 में 8वीं कक्षा पास करने के पश्चात वे अपनी पढ़ाई चालू नहीं रख सके और 1941 में फौज में भरती हो गये। 1948 में फौज से सेवामुक्त होकर आप गांव वापस आ गये।

आप हिसार के समाजवादी स्वतंत्रता सेनानी नेता दादा गणेशलाल के संपर्क में आये। दादा गणेशीलाल पंजाब और हरियाणा में सर्वोदय की गतिविधियों से जुड़े हुए थे। आप भी दादा से जुड़कर सर्वोदय की गतिविधियों को पूरे प्रदेश में संचालन किया और बाद में हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष भी बने।

ऐसे समर्पित सर्वोदय सेवक को हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल के साथियों ने विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की। ❑

संपादक के नाम पत्र

गांधीजी की शहादत, भारत का विभाजन व उस समय की वास्तविकताओं को आप उत्तम ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। 'सर्वोदय जगत' में पाठकों की जिज्ञासा की पूर्ति तथा भ्रामक धारणाओं के निवारण के लिए इस पत्रिका में 'प्रश्नोत्तर' प्रारम्भ करना चाहिए, यह मेरा विनम्र सुझाव है। वैसे तो आप चुनीभाई की पुस्तक के पुनर्पाठ द्वारा कई गलतफहमियों का निवारण कर ही रहे हैं।

जिन लोगों ने तत्कालीन इतिहास का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है, उसका लाभ पाठकों को मिलना चाहिए। अंक 11 में शिव-प्रसाद मिश्र का उत्तम लेख प्रस्तुत किया है, इस हेतु आप प्रशंसा और बधाई के पात्र हैं।

मनुबहन गांधी की पुस्तक 'अंतिम झांकी' सम्पादित करके पुनः प्रकाशित की जानी चाहिए। गांधीजी ने अपने आखिरी आठ-दस वर्षों में बार-बार कांग्रेसजनों को चेताया था। उन्होंने मंत्रियों व सेवकों के लिए कई चेतावनी दी थी, उनकी वे सब अंतिम वर्षों की बातें बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। वे अब पुनः भारत की जनता के सामने रखी जानी चाहिए ताकि लोग समझें कि भारत में गांधीजी क्या चाहते थे? हिन्द स्वराज्य तो बहुत ऊंचे दर्जे की चीज है, मगर जीवन के आखिरी दशक में उन्होंने जो चेतावनी दी वे व्यावहारिक बातें जनता के सामने आनी चाहिए। उसमें कई बातें तो ऐसी हैं, जिन्हें हमारे राज-नेताओं ने प्रचारित ही नहीं होने दिया। वे उजागर होनी चाहिए।

इस अंक के आखिरी पृष्ठ पर न तो गांधीजी का चित्र उपयुक्त है और न ही कविता प्रभावशाली है।

–चिन्मय व्यास, देहरादून

पत्रिका में छपे लेख आपको पसंद आये, जानकर प्रसन्नता हुई। आपने जो सुझाव दिया है, उसके लिए आभार!

–कार्य. सं.

और अंततः

कहने को अबला नारी है दुनिया पर भारी

❑ अशोक मोती

गांधी ने सच कहा—'नारी अबला नहीं है' और इसे एक नारी ने सच कर दिखाया है और उसकी जिजीविषा और उसका सत्याग्रह आज सारी दुनिया पर भारी है, दुनिया आश्चर्यचकित है।

भारत की आजादी के पूर्व या उसके बाद भी सैकड़ों वर्ष के इतिहास में ऐसा देखने को नहीं मिला है कि जब एक नारी ने सत्याग्रह का अद्‌भुत नमूना पेश कर लोगों को अचंभित किया हो। सत्याग्रह का यह प्रयोग सचमुच अनुपम है, जिसने नारी को सम्मानित कर उसे सचमुच सबला बना दिया है। इस अद्‌भुत नारी का नाम है *'इरोम चानु शर्मिला'*। आज यदि गांधी होते तो भारत की इस बेटी पर वे नाज करते। क्योंकि एक जमाना था, जब गांधी को महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन के लिए घर की चहारदीवारियों से बाहर निकालने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी थी। यहां तक कि उनके व्यक्तिगत उपवास के लिए भी गांधी के निकट के लोग कभी भी उन्हें सहर्ष सहमति नहीं देते थे। यह तो उनका आत्मविश्वास और ईश्वरीय प्रेरणा थी, जिस आधार पर गांधी उपवास पर बैठते थे। गांधी ऐसे शुद्ध उपवास को प्रभावशाली मानते थे, जिसमें व्यक्ति का चित्त ईश्वर से लगा रहता है, उसे चीजें शुरू में अंधकारमय दीखती हैं, लेकिन सारी चीजें धीरे-धीरे स्पष्ट होती जाती हैं।

1924 में हिन्दी-मुस्लिम दंगे के समय किये 21 दिनों के उपवास को लेकर गांधी ने बड़े जोर देकर कहा था—*"मुझे तो लगता है कि उन उपवासों ने उस समय तो काम किया ही था किन्तु 5000 साल के बाद भी ये उपवास काम करेंगे।...सच्चा उपवास तब माना जाता है, जब चित्त और आत्मा का शरीर के साथ सहयोग हो।"* बापू की यह बात इरोमा की जिन्दगी में सच हुई दीखती है। पिछले 12 वर्षों से उसने उपवास कर रखा है और उसका भी कहना है—*"मुझे ईश्वर से काफी मानसिक शक्ति मिली है, एक बार अगर आप किसी लक्ष्य पर अपना ध्यान लगा लें तो कोई भी चीज आपको अपने पथ से भटका नहीं सकती, भूख भी नहीं। यह ध्यान जैसी स्थिति है। मुझे अपने अंतर में ईश्वर की अनुभूति होती है, उस ईश्वर की जो मुझे मानवता, सच्चाई और प्रेम के लिए संघर्ष की ताकत देता है। देर-सबेर महात्मा गांधी की इस धरती से सशस्त्र बल विशेषाधिकार (अपस्मा) अवश्य हट जायेगा, जिसके लिए मैं पिछले 12 वर्षों से अन्न-जल त्याग कर सत्याग्रह पर हूं।"*

चानु आज न केवल अपने प्रदेश मणिपुर, जिसे 1972 में भारतीय राज्य के रूप में पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त है, उसके लिए संघर्षरत नारी के रूप में, बल्कि पूरे देश में लोकतंत्र और मानवता की स्वतंत्रता के लिए अहिंसक सत्याग्रही के रूप में आदर्श है। वह तो आज पूरे विश्व में एक सच्चे सत्याग्रह की प्रतिमूर्ति है, एक प्रतीक है नारी शक्ति का।

नारी द्वारा किये जा रहे इस सत्याग्रह का महत्त्व इसलिए और बढ़ गया है कि एक नारी इस देश में ब्रिटिश अध्यादेश पर आधारित आक्रामक व दमनकारी कानून जो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को दबाने के लिए 1942 में बनाये गये थे, के आमने-सामने खड़ी हो गयी है, जिस प्रकार कभी गांधी अपने उपवास और सत्याग्रह को शक्तिशाली और क्रूर ब्रिटिश शासन के सामने 'बिना खड्ग बिना ढाल' परास्त करने की कोशिश की थी। अस्तु इरोमा का सत्याग्रह यह भी सिद्ध करेगा कि एक सच्चा सत्याग्रही अकेले कैसे एक पूरी व्यवस्था को परास्त कर सकता है। 22 फरवरी बा की पुण्य-तिथि पर हम पूज्यनीय बा को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित और बापू का स्मरण करते हुए विश्वास करते हैं कि उन सबों की आत्माएं अपनी इस बहादुर बेटी इरोमा के साथ होंगी और उन्हें आशीषित करेंगी।

एक अबला नारी सचमुच पूरी दुनिया पर है भारी। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450